-श्रीकृष्ण-
सन्देश
वर्ष : ५
अंक : २

पठनीय !

संग्रहणीय !!

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला

की

प्रथम पुण्यतिथिपर

प्रकाशित

श्रद्धांजलि-ग्रन्थ

देश-विदेशके मनीषियों द्वारा सँजोयी गयी अनुपम, प्रेरक विचार सामग्री ।

श्रीकृष्ण-सन्देशके ग्राहकोंको केवल लागत मात्रपर उपलब्ध है ।

श्रीकृष्ण-सन्देश
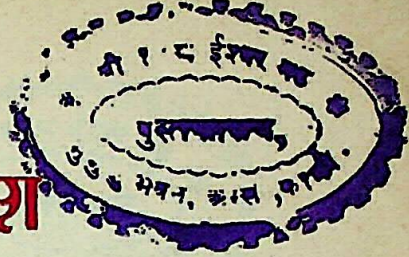
धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

★

वर्ष : ५ अङ्क : २
सितम्बर, १९६९

वार्षिक शुल्क : ७.००
आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३३८

विषय-सूची

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

(सितम्बर १९६९)

भगवान् श्रीकृष्णकी परम पुनीत इस जन्मभूमिका दर्शन अवश्य ही मानवमात्रके परम कल्याणका सम्पादन करनेवाला है। हमारी मथुरा नगरी आज इस बातसे गौरवान्वित है कि व्रजकी इस पावन विभूतिके उद्गम-स्थानका यहाँ नव-निर्माण हो रहा है, इस प्रवृत्तिको देख हार्दिक प्रसन्नता हुई।

गोस्वामी माधव रामजी महाराज
(पोरबन्दर)
वल्लभ-सदन, वल्लभाचार्य मार्ग, मथुरा

भगवान् श्रीकृष्णका जन्मस्थान देखकर मनको तृप्ति तो प्राप्त हुई ही, आत्मामें एक ऐसी प्रेरणाकी जागृति हुई जिससे उस परम पिता परमात्माकी आराधनाके लिए चाह भी बढ़ी।

हरीराम
मारकेटिंग एडवाइजर, लखनऊ

पवित्र नगरी मथुरामें योगीश्वर श्रीकृष्णके जन्मस्थानको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँकी स्वच्छता, सुन्दर वातावरण, मन्द समीर तथा सेवासंघके कर्मचारियोंका हृदय-स्पर्शी मधुर व्यवहार किसका मन नहीं मोहता। इस स्थानकी उन्नतिके लिए प्रत्येक मनुष्यका यथोचित सहयोग वाञ्छनीय है। यह सनातन धर्मकी अमूल्य निधि है।

जगदीश प्रसाद तिवारी
ट्रैफिक इन्सपेक्टर (रोडवेज), लखनऊ

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा एवं प्रेरणासे आज उनके जन्मस्थानके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे जीवनमें ऐसे सुयोग अनेक वार आये हैं और मैंने सदा ही उन्हें प्रभुकी अहैतुकी कृपा ही माना है। उस लीलामयके ऐतिहासिक गौरवको सुरक्षित रखना एक अनिवार्य वात थी, जिसकी विद्वान् सदासे ही चिन्ता कर रहे थे। सौभाग्यसे पुरातत्त्व विभागकी सक्रियताके परिणामस्वरूप उस मूल स्थानकी शोध हो पायी और आज जिन उत्साही और धर्मप्राण व्यक्तियोंने उस इतिहासको नवीन अर्थ दिया है वे प्रशंसाके अधिकारी हैं। इतना विराट् और भव्य आयोजन। वस्तुतः सव भगवान्‌का ही कृपा-प्रसाद है। मैं व्यक्तिगत रूपसे यही कहना चाहूँगा कि यहाँ जिस सात्त्विक भावसे सव काम हो रहा है वह मानव जीवनकी वड़ी सार्थकता है। विश्वभरके लोगोंके लिए सच्चिदानन्दकी जन्मभूमिपर निर्मित यह भव्य भवन और मन्दिर, आकर्षणका केन्द्र वने और सभी अपने जीवनको पवित्र करनेकी सत्प्रेरणा लेकर यहाँसे लौटें; मेरी यही कामना है।

राजेन्द्र कुमार शर्मा
प्राध्यापक : दिल्ली कालिज (सान्ध्य)
दिल्ली

हमने सपरिवार श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शन किये। स्थान मनको भानेवाला एवं रमणीक है। हृदयको वड़ी प्रसन्नता एवं शान्ति प्राप्त हुई।

शंकर खेतान
खेतान हाउस,
पडरौना (देवरिया)

आज इस स्थानके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह वहुत ही अच्छी वात है कि पुरातन श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर नव-निर्माणका कार्य अच्छे ढंगसे हो रहा है। भगवान् करें इस अच्छे कामको सम्पन्न करनेमें समस्त जनवर्गका सहयोग प्राप्त हो। अच्छी व्यवस्थाके लिए मैं अपनी ओरसे सराहना और शुभेच्छा देता हूँ।

श्री शंकर रावजी चव्हाण
मंत्री सिंचाई व बिजली
महाराष्ट्र राज्य, वम्वई–३२

As an ardent student of the Lord's story life and teachings I have been deeply touched and impressed by what I have seen here. I am very gratifying to see that the great story is being reconstructed as a tribute to the Lord and our rich heritage.

P. K. Anantanarayana
Chief Commercial Supdt.
N. E. Rly. Gorakhpur

I, as a south African Hindu feel immesly pround to see and learn of the great efforts being made to preserve and maintain the birthplace of Lord Krishna. God may bless you and your efforts to achieve your desire.

R. V. Ronnah and Party
Natal (S. Africa)

An enviable enterprise for spiritual and social development of human being.

P. N. Dwivedi
Field Publicity officer
Govt. of India, Meerut.

Saw the site twice during the beginning of the construction and now when lot of progress has been made. May His divine structure be an inspiring spiritual, be can to many future generations of the centuries to come.

Kamaleswar Barme
Retd. Chief Engineer Assam
Gohati

Much pleased to see the Janmesthan Temple and other places and found it most interesting and neat and clean. The original writings etc. are really missing which should be brought from museum and put at the proper places. Rest of the planning is most beautiful.

S. K. Somani
Shree Niketan
Marine Drive, Bombay-2

After listening to the history and seeing the birthplace of Lord Krishna one is sure to feel that Shree Krishna and the stories about him are real. The work of building the temple is noble and stupendous and the least we should do is to wish and pray for its successful and speady Completion.

M. M. Bam
Chief Mech. Engineer
N. E. Rly. Corakhpur

D. S. Pandey
Assist. Mech-Engineer, Fatehgarh

V. R. Chaubey
Dist. Traffic Supdt.
N. R. Rly. Fatehgarh

We were very much impressed by the temple of Lord Krishan and we are glad to see the temple being Constructed for Bhagwat.

Ramniklal Amritlal Zaveri
Sneha-Kutir, Peddar Rd.
Bombay-26

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ५] मथुरा, सितम्बर १९६९ [अङ्क : २

भक्ति और भक्त

जो मुझ परमात्माकी कथा-वार्ताके श्रवणमें श्रद्धा रखता है, मेरे गुणों और चरित्रोंके श्रवण-कीर्तनमें जिसकी हार्दिक अभिरुचि है। अन्य समस्त कार्योंके प्रति जिसके मनमें कोई उत्साह नहीं है, अपितु विरक्ति ही बढ़ती जाती है तथा जो समस्त कामों—भोगपदार्थोंको केवल दुःखरूप जानता है, उनमें लेशमात्र भी सुखका विश्वास नहीं रखता; वह उन भोगोंको सहसा त्याग देनेमें असमर्थ हो तो भी प्रसन्नतापूर्वक मेरा भजन करता रहे। मुझमें अविचल श्रद्धा बनाये रखे। अपना निश्चय न बदले, उसे दृढ़तापूर्वक सुरक्षित रखे। जो-जो भोग-पदार्थ प्राप्त हों, उनका सेवन करते रहनेपर भी उनमें आसक्त न हो। ये भोग भविष्यमें दुःख ही देनेवाले हैं, ऐसा अनुभव करके उनकी निन्दा करे, उनकी सदोषताको डंकेकी चोट कहे। भक्तियोगका आश्रय ले निरन्तर मेरे भजनमें तत्पर रहे। ऐसा पुरुष साधारण मानव नहीं, मुनि है। उस मुनिके हृदयमें मैं सुव्यक्त रूपसे निवास करने लगता हूँ। वह यह अनुभव करता है, देख पाता है कि भगवान् मेरे हृदयमन्दिरमें निवास कर रहे हैं।

मेरे स्थित होते ही उसकी सारी आन्तरिक कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। मुझ सर्वात्मा परमेश्वरका साक्षात्कार होनेपर हृदयकी गाँठ अविद्याकी ग्रन्थि खुल जाती है; अविद्याके हटते ही सारे संशयोंका उच्छेद हो जाता है और उस भक्तके समस्त कर्म—सारे बन्धनकारक तत्त्व क्षीण हो जाते हैं। ज्ञानाग्निके प्रज्वलित होनेपर कर्मोंके सूखे ईंधन दग्ध हुए बिना कैसे रह सकते हैं। इसलिए जिसके हृदयमें मेरी भक्तिकी सुरधुनी प्रवाहित है, जो मुझे ही अपना आत्मा या परमात्मा मानता है, उस भक्तियोगी पुरुषके लिए इस लोकमें न तो ज्ञान श्रेय-साधक होता है, और न वैराग्य ही।

जो कर्मोंसे, तपस्यासे, ज्ञान और वैराग्यसे, योगानुष्ठानसे, दान-धर्मसे तथा अन्यान्य श्रेयसाधक उपायोंसे प्राप्त होनेवाला फल है, वह सब मेरा भक्त मद्विषयक भक्तियोगसे अनायास प्राप्त कर लेता है। यदि वह लेना चाहे तो उसे स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) तथा मेरा परम-धाम भी प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि मेरे अनन्य भक्त, जो परम साधु और धीर हैं, कुछ लेना ही नहीं चाहते हैं। मैं उन्हें कैवल्य मोक्ष भी दे दूँ तो वे उसे अस्वीकार कर देते हैं। किसी भी वस्तुकी अपेक्षा न रखना—यही सबसे महान् निःश्रेयस बताया गया है। यही सर्वाधिक मङ्गलनिधि है। अतः जो सर्वथा भोगोंसे विरत हैं, कुछ भी लेने या पानेकी इच्छा नहीं रखता है, उसीको मेरी भक्ति प्राप्त होती है। इसलिए मेरे एकान्त भक्त हैं, मुझमें अनन्य अनुराग रखनेवाले हैं, जिनका चित्त सबके प्रति समभाव रहता है तथा जो बुद्धिसे भी परे पहुँच गये हैं; ऐसे साधु-महात्माओंको गुण-दोष जनित गुण नहीं प्राप्त होते हैं। इस प्रकार मेरे बताये हुए इन धर्मोंका जो पालन करते हैं उन्हें ही कल्याणकी प्राप्ति होती है। उन्हींको मेरा वह स्थान प्राप्त होता है, जिसे ज्ञानी पुरुष 'परम ब्रह्म'के नामसे जानते-मानते हैं।

जो अपना मन, प्राण तथा आत्मा मुझे सौंप चुके हैं, जिन्हें कहीं किसी ओरसे भी कोई अपेक्षा नहीं है। उसे मुझ आत्माके द्वारा जो सच्चा सुख प्राप्त होता है, वह विषयी पुरुषोंको कैसे मिल सकता है ? जिसके पास किसी वस्तुका संग्रह नहीं, जो जितेन्द्रिय और मनोनिग्रही हो गया है; जिसका अन्तःकरण सम है; तथा जो मुझसे ही संतुष्टचित्त है, उसके लिए सारी दिशाएँ सुखमयी हैं। मुझको आत्मसमर्पण करनेवाला भक्त मुझे छोड़कर दूसरा कुछ नहीं चाहता, भले ही वह परमेष्ठी (ब्रह्मा) और इन्द्रका ही पद क्यों न हो, चक्रवर्ती सम्राट् या पातालका ऐश्वर्य ही क्यों न हो ? वह योगजनित सिद्धियों तथा मोक्षको भी ठुकरा देता है। ब्रह्मा, शिव, शेषनाग, लक्ष्मी तथा अपनी आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है, जितना कि भक्त है। मैं निरपेक्ष, शान्त, निर्वैर और समदर्शी मुनिस्वरूप भक्त के पीछे-पीछे इसलिए फिरा करता हूँ कि उसकी चरणधूलि मुझपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ। एक मात्र भक्तिसे ही मैं वशमें होता हूँ; दूसरा कोई भी साधन मेरे लिये उतना आकर्षक नहीं है, जितनी कि भक्ति है। मेरी भक्ति नीचसे नीचको भी पवित्र कर देती है। (श्रीमद्भागवत)

★

श्रीकृष्ण सदा हमारे प्रेरक और पथदर्शक

शाश्वतनेता और युगपुरुष

श्रीशङ्खपाणि

★

श्रीकृष्ण हमारे शाश्वतनेता और युगपुरुष है। गीता, महाभारत तथा पुराणोंमें जो उनके उपदेशवचन मिलते हैं, वे हमारे लिए सतत मार्गदर्शन करा सकते हैं। जीवनमें कैसी ही परिस्थिति क्यों न आये, श्रीकृष्णकी शरण लेनेसे हम उस परिस्थितिपर विजय पा सकते हैं। श्रीकृष्णका साथ सदा हमें प्राप्त है। उनका वरद हाथ सदा हमारे मस्तकपर है। एक ओर वे ही घट-घट व्यापी ब्रह्म हैं, सच्चिदानन्दघन परमात्मा हैं; रोम-रोममें ब्रह्माण्ड लिये बैठे हैं और सृष्टि, पालन तथा संहारकी लीलाएँ करते हैं। दूसरी ओर सबसे परे निष्क्रिय, निर्गुण और निराकार हैं। वे सब कुछ करते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं। सबमें हैं, सब उनमें हैं; साथ ही वे सर्वातीत हैं। अस्ति-नास्ति—सबके परम और चरम अधिष्ठान वे ही हैं। परस्पर विरोधी गुणों और भावोंके आश्रय श्रीकृष्ण ही वेदान्तवेद्य परमतत्त्व हैं।

आज हमारे समक्ष जो जगत् है, वह दृश्यरूपसे कल्पित है, मिथ्या है, माया है; परन्तु यह व्यतिरेक दृष्टि है। यदि अन्वय दृष्टिसे देखें तो सब कुछ श्रीकृष्णका ही स्वरूप है, उन्हींका लीलाविलास है। जिसके निमित्त और उपादान श्रीकृष्ण हों, परब्रह्म परमात्मा हों, वह असत्य कैसे हो सकता है। सत्य उपादानसे असत्यका विधान कैसे संभव है। इसीलिए श्रुति डिण्डिम-घोपके साथ कहती है—'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' स्मृतिका भी यही मत है—'वासुदेवः सर्वम्।' सुवर्णमय आभूपणोंके नाम-रूप कल्पित या मिथ्या हो सकते हैं; किन्तु सुवर्णत्व तो उनका सत्य ही है। अतः आज दृष्टि बदलनेकी आवश्यकता है। हम जगत्को श्रीकृष्णके रूपमें देखना सीख जायँ, फिर तो यहाँकी हर वस्तु चेतन है, श्रीकृष्ण है। यही कारण है कि तत्त्वदर्शी मनीपी पुरुष सबको भगवत्स्वरूप समझकर प्रणाम करनेकी प्रेरणा देते हैं—

'सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः।' (भाग० ११।२।४१)

हर जड़ वस्तुका एक अधिष्ठाता चेतन है; जिसे हम देवता कहकर उसकी समाराधना करते हैं। श्रीकृष्णसे भिन्न देवता-बुद्धि करके उनका पूजन करना अविधिपूर्वक पूजन है—

'तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।' (गीता ९।२३)

क्योंकि उन देवताओं के आराधनका फल भी उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी ओरसे ही प्राप्त होता है—

'लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्।' (गीता ७।२२)

यह अन्य देवता-बुद्धि उन्हें श्रीकृष्णमिलनके सुखसे वञ्चित कर देती है।

यदि जगत्में श्रीकृष्ण-दृष्टि हो जाय तो यहाँका सब कुछ हमारे लिए सुखद हो जाय। हम श्रीकृष्णको ही देखें, उन्हींको सुनें और अपनी प्रत्येक इन्द्रियसे, तन, मन, प्राणसे श्रीकृष्ण-की ही सेवा करें। इस जगत्में दीन-दुखियोंकी सेवा, असहायोंकी सहायता, गिरे हुएको उठाना, रोगीको चिकित्साकी सुविधा देना, भूखेको भोजन देना तथा शिक्षार्थीके लिए शिक्षाकी सुविधा प्रस्तुत करना आदि सारे परहित-साधन-संबन्धी कर्म श्रीकृष्णकी आराधना बन जायँ तथा हमें प्रतिक्षण श्रीकृष्णके दर्शन-स्पर्शके रसकी अनुभूति होने लगे। हमारा यह अभिमान दूर हो जाय कि हम दूसरोंका उपकार करते हैं या उनको देते हैं; हम दाता और उपकारी हैं और दूसरे लोग हमसे दान लेकर उपकृत होते हैं इत्यादि। उलटे हम उनका उपकार मानने लगें कि उन्होंने भगवत्सेवाका अवसर दिया।

जब श्रीकृष्ण स्वयं अपने आपको प्राणिमात्रका सुहृद् कहते हैं, तब हमें उन्हें असुहृद् माननेकी भूल नहीं करनी चाहिए। जो जन-जनका सुहृद् नहीं, वह जननायक या नेता होनेका अधिकारी नहीं। जनसेवक ही जननायकके पदपर प्रतिष्ठित हो सकता है; शासक नहीं। इसीलिए श्रीकृष्ण अपनेको जीवमात्रका सखा या सुहृद् घोषित करते हैं। जीव और ईश्वर का परस्पर सख्य-सम्बन्ध उनकी श्रुति-वाणी द्वारा भी प्रतिपादित है—'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' इत्यादि।

यह केवल शाब्दिक घोषणा नहीं है, हम श्रीकृष्णके अवतार-कालमें इसका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिए। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त श्रीकृष्ण कभी किसी घेरेमें आबद्ध नहीं रहे, लकीरके फकीर नहीं बने, कोई बात दीर्घकालसे चली आती है, परम्परानुमोदित है, इसीलिए हमें आँख मूँदकर उसे मानते चलना चाहिए; यह श्रीकृष्णको संमत नहीं है। देश, काल तथा परिस्थितिके अनुकूल आवश्यक हो तो पुरानी परम्परा बदली जा सकती है और नई परम्पराकी नींव डाली जा सकती है। यह श्रीकृष्णने करके दिखाया है। उनकी स्वच्छन्दता ही उनकी भगवत्ता है। उन्होंने सदा अपनी आँखोंसे देखा है, अपनी बुद्धिसे समझा है और जो उचित समझा है उसे ही किया है। यह अनावृत दृष्टि या बोध उनका स्वरूप है। उन्होंने जनहितके लिए बड़े-बड़ोंसे संघर्ष किया। इन्द्र, ब्रह्मा और मृत्युञ्जयको भी परास्त करके अपनी टेक रक्खी। यही उनका अव्याहत परमैश्वर्य है।

द्वापरके उस युगपर दृष्टिपात कीजिये, कैसा भीषण समय था, नरभक्षी देवद्रोही असुर मानवका वेष बनाकर यत्र-तत्र शासक बन बैठे थे। उत्पीडित शोषित मानवता कराह रही थी। किसीके धन, मान, और जीवन सुरक्षित नहीं थे। सारा भारत ही नहीं भूतलमात्र दानवों के दारुण अत्याचारसे त्रस्त था। पृथ्वीके लिए उस समय अपने ऊपर होनेवाले पाप-कृत्योंका भार ढोना असह्य हो उठा था। मानवोंके यज्ञ-यागसे आजीविका चलानेवाले देवता भी सशङ्क थे। सबने मिलकर पूर्ण परमेश्वरको पुकारा; यह पुकार परब्रह्मरूपी व्रजमें विहार करनेवाले पूर्णतम सच्चिदानन्द-घन सर्वात्मा एवं सर्वेश्वर श्रीकृष्णने सुनी और वे कुछ देवताओं

तथा देवाङ्गनाओंको भूतलपर अवतीर्ण होनेका आदेश दे स्वयं भी यहाँ प्रकट हो गये। प्राकटचका तात्पर्य इतना ही है कि नित्य अजन्मा विभुने योगमायाका आवरण हटा दिया और मानवलोकके प्राणी भी प्रभुके उस दिव्यातिदिव्य रूपमाधुरीका नेत्रपुटोंसे पान करके कृतार्थ होने लगे। यद्यपि भूभार-हरण, दुष्टनिवर्हण, साधु-संरक्षण एवं सद्धर्म-संस्थापन जैसे कार्य उनके संकल्पमात्रसे हो सकते थे। इसके लिए उन्हें अवतार लेनेकी आवश्यकता नहीं थी, तथापि भगवान् यहाँ कुछ ऐसा चरित्र कर जाना चाहते थे, जिसे भविष्यमें होनेवाला जनसमुदाय सुनकर चिन्तन करके परमानन्द प्राप्त कर सके—

'श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यान्निति केचन।' (भाग० १।८।३५)

वे कोई ऐसा ज्ञानप्रदीप जला जाना चाहते थे, जो युग-युग तक मार्ग-दर्शन कराता रह सके। कहकर सुनानेसे करके दिखाना अधिक प्रभावकारी होता है इसलिए वे भूतलपर अवतीर्ण हुए। अवतारका उद्देश्य तो परिपूर्ण हुआ ही, उनकी विभिन्न लीलाओंसे उनके परम-प्रेमी भक्तोंको अपार सुख मिला। साथ ही वे अनागत कालके लोगोंके लिए भी कुछ कहकर सुना गये और कुछ करके दिखा गये।

प्रारम्भसे ही दृष्टिपात कीजिये—जो निखिल ब्रह्माण्डनायक और नित्य मुक्त हैं; वे चाहते तो किसी जगद्-विख्यात चक्रवर्ती सम्राट्के घरमें प्रकट हो सकते थे; किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। राजत्वके अधिकारसे वञ्चित यदुकुलमें अवतार लेना पसंद किया। दूसरोंको मुक्ति देनेवाले परमात्मा स्वयं बन्धनागारमें बन्दी माता-पिताकी गोदमें प्रकट हुए। जिस राक्षस कंसने अपने माँ-बापको भी कैद कर रखा था; गर्भवती बहनके भी हाथ-पैरमें हथकड़ी-बेड़ियाँ डाल रखी थीं; उसीका विध्वंस करनेके लिए दीनबन्धु अशरण-शरण भगवान्ने उसीके घरमें बन्दिनी देवकी और बन्दी वसुदेवको अपने माता-पिता बननेका गौरव प्रदान किया। 'निर्बलके बल राम'की कहावत अक्षरशः चरितार्थ हुई। इससे जनताकी सहानुभूति उत्पीडित वसुदेव देवकीके प्रति जाग्रत् हुई। कंसके अपने ही कुटुम्बी तथा कर्मचारियोंमें से बहुसंख्यक लोग मन-ही-मन उसके विद्रोही हो गये। पहरेदार संभव है, जान-बूझकर भी सो गये हों, जेलरने ही बेड़ी-हथकड़ी हटा दी हो और वसुदेवको यह अवसर दिया गया हो कि वे अपना बालक कहीं सुरक्षित स्थानमें पहुँचा आयें। यदि भगवान्के संकेतसे ही ऐसा हुआ तो भी उनकी कितनी उदारता है कि उन्होंने किसी संबन्धी राजाके राजमहलमें पहुँचानेके लिए नहीं कहा और उन तीसरी-चौथी श्रेणीके लोगोंमें रहना पसन्द किया, जिनका उस समय की सामाजिक दृष्टिसे कोई ऊँचा स्थान नहीं था।

ब्रजमें पहुंचनेके बाद हमारे जन-नायक बाल-कृष्णको एक-एक करके जनताके कण्टकोंको उखाड़ फेंकनेकी चिन्ता करनी पड़ी। सबसे पहले उन्होंने बाल-घातिनी पूतनाकी खबर ली। स्वयं बालरूप होनेके कारण उन्होंने बाल-मण्डलका नेतृत्व किया और बालकोंका संकट दूर करके उनकी रक्षाका उपाय किया। शिशुघातिनीका वध किसी शिशुके द्वारा ही हो, यह परम आवश्यक था। मायाविनी पूतना स्तनमें विष लगाकर आयी और सामान्य बालक समझकर उसने उनके मुखमें स्तनाग्र दे दिया। बालकने सिर हिलाया और घुंघराले काले केशों द्वारा

जहर पोंछकर इतने वेगसे दूध पीना आरम्भ किया कि उसके प्राण तक खिंचकर वाहर आ गये। फिर भी उसे माताकी गति प्राप्त हुई—यह श्रीकृष्णकी सहज उदारतासे ही संभव हुआ। कंसरायके पुरोहितजी यजमानको खुश करनेके लिए स्वयं नन्दशिशुकी हत्याके लिए पधारे। एकान्त घरमें उनकी कुचेष्टा देख श्रीकृष्णने उनकी जीभ ऐंठ दी, वे गूँगे हो गये और राक्षस होनेके संदेहमें व्रजवासियोंने उनको व्रजकी सीमासे वाहर कर दिया। यही हाल उत्कच तथा तृणावर्तका हुआ। वे वारी-वारीसे श्रीकृष्णको कुचलनेके लिए आये किन्तु स्वयं ही कुचल दिये गये। धीरे-धीरे कुछ वड़े होनेपर श्रीकृष्णने ग्वालवालोंकी एक भारी मण्डली संगठित कर ली और उन सवके साथ इतना उदार तथा सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार-वर्ताव किया कि सवके सव उनपर प्राण देने लगे। उन्होंने चिरकालसे स्थावर भावको प्राप्त हुए कुवेरके दो वालकोंका उद्धार किया।

उस व्रजमें आये दिन राक्षसोंका उत्पात देख व्रजवासी गोकुल छोड़कर वृन्दावन आ गये। घनश्यामकी दृष्टि पड़ते ही वह वनप्रान्त अभिनव हरियालीसे लहलहा उठा। अव वे भैया वलरामके साथ वछड़े चराने जाने लगे। समस्त ग्वाल-वाल भी जुट जाते थे। गर्मी, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त सभी ऋतुओंमें वे साथ खेलते, खाते और आनन्द मनाते थे। गोप, ग्वाल-वाल और गौओंकी रक्षाके लिए वहाँ भी नन्दनन्दनने एक-एक करके वत्सासुर, वकासुर तथा अघासुर—इन कण्टकोंका उन्मूलन किया। अपने इस शौर्यपूर्ण कृत्योंसे वे व्रजवासियोंके प्राणोपम प्रिय हो गये।

एक दिन सव ग्वालवालोंके साथ वैठकर श्रीकृष्ण कलेवा कर रहे थे। सव एक दूसरेके जूठे हाथसे भी भोजनकी वस्तु लेकर खा लेते थे। इसी वीचमें व्रह्माजी आये तो उन्हें मोहने धर दवाया। वे विश्वास ही नहीं कर सके कि यह वालक 'व्रह्म' हो सकता है। उन्होंने ग्वाल-वाल और वछड़े दोनों चुराकर कहीं छिपा दिये। श्रीकृष्णसे उनकी यह करतूत छिपी नहीं रह सकी। उन्होंने अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिके प्रभावसे अपने आपको ही उतने वालक और वछड़ोंके रूपसे प्रकट कर लिया। व्रह्माजी लौटकर आये तो चकित रह गये। वे निर्णय नहीं कर सके कि इनमें असली कौन हैं? फिर उन्हें सव श्रीकृष्णमय दिखायी दिये। वे अपनी मायामें आप ही उलझ गये। भगवत्कृपासे जव मोह दूर हुआ तव उन्होंने सव वालक और वछड़े लौटा दिये तथा स्तुति करके व्रह्मलोककी राह ली।

अव कुछ और वड़े होनेपर श्रीकृष्णने गोचारण शुरू किया। इसी अवस्थामें उन्होंने धेनुकासुरको मौतके घाट उतारा और तालवनका मार्ग निष्कण्टक किया। कालिय नागका दमन करके उसे यमुनाके जलसे दूर भगा दिया। व्रजवासियोंकी दावानलसे रक्षा की। प्रलम्वको मारा, मुञ्जाटवीमें गौओं और गोपोंको आगमें जलनेसे वचाया। चीरहरणकी लीला करके व्रज-कुमारियोंमें प्रचलित नग्न-स्नानकी कुप्रथाको तत्काल वंद करा दिया। यज्ञ-पत्नियों-पर महान् अनुग्रह किया। अनादिकालसे व्रजमें चली आती हुई इन्द्र-पूजाकी व्यर्थता सिद्ध करके गोवर्धन-पूजनकी नयी प्रथा चलायी, जो लगभग पाँच हजार वर्षोंसे प्रतिवर्ष व्रजमें पालित होती आ रही है और श्रीकृष्णकी ऐतिहासिकताका जीता-जागता प्रमाण है। (शेष पृष्ठ ७५ पर)

आह्वान

आवो भारत के प्रतिपालक, फिर दीप्ति दिव्य वह दमक उठे।

(१)

फैली असुरों की माया है, कलुषों की काली छाया है।
दुर्दम दानवता ने सदर्प, मानव को दौड़ दबाया है।
आवो शिशुघाती के घालक, यश के सौरभ की गमक उठे॥

(२)

छप-छप छलियों की छटनी हो, क्रूरों कुटिलों की कटनी हो।
मल्लों की दुनिया दहल उठे, चाणूर कंस की चटनी हो।
आवो खल-दल के उद्दालक, तल-आघातों की धमक उठे॥

(३)

जूए सट्टे में जीत-जीत कोई धन का अधिकारी हो।
कोई वंचित वेघर-द्वार, वन-वन में फिरे भिखारी हो।
आवो जीवन-रथ-संचालक, फिर तीर तुरंगम तमक उठे॥

(४)

कोई पूरव में बढ़ आया, कोई पश्चिम से चढ़ आया।
हिमगिरि घाटी को भी कोई, लेने की पाटी पढ़ आया।
आवो रिपु-सेना-आस्फालक, पाञ्च-जन्य-रव वमक उठे॥

(५)

भ्रम-पूरित वोध न हो अपना, निष्फल प्रतिरोध न हो अपना।
सम्मुख आ जाये भीष्मव्रती, तो भी गति-रोध न हो अपना।
आवो अरिपुर के प्रज्वालक, फिर चक्र हाथ में चमक उठे॥

—'*राम*'

श्रीराधा और कृष्णके अभिन्न स्वरूपका तात्त्विक विवेचन

श्रीराधा-कृष्ण ★ *स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती*

भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी सर्वथा अभिन्न और एक ही हैं। श्रीकृष्ण श्रीराधास्वरूप हैं और श्रीराधा श्रीकृष्णस्वरूप। 'कृ' राधा हैं और 'ष्ण' कृष्ण। यहाँतक कि 'कृ' में भी 'क' कृष्ण हैं, 'ऋ' राधा। वैसे ही 'राधा' के सम्बन्धमें भी हैं। किसी भी समय, किसी भी देशमें, किसी भी निमित्तसे और किसी भी रूपमें श्रीराधाकृष्णका पार्थक्य सम्भव नहीं है। एक ही अर्थके दो शब्द हैं, एक ही वस्तुके दो नाम हैं। जब उनमें देश, समय और वस्तुकृत भेद ही नहीं है तो यह बात कैसे कही जा सकती है कि वे दोनों दो हैं? यही कारण है कि श्रीकृष्णकी लीला श्रीराधाकी लीला है और श्रीराधाकी लीला श्रीकृष्णकी। ऐसी स्थितिमें यह कहना कि अमुक ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी लीला है, श्रीराधाकी नहीं, अथवा श्रीराधाकी लीला है, श्रीकृष्णकी नहीं, सर्वथा असङ्गत है। श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें भी ठीक यही बात है।

भगवान् श्रीकृष्णकी अथवा भगवती श्रीराधाकी एकता होनेपर भी अनेकता है। भेदमें अभेद और अभेदमें भेद—यही लीलाका स्वरूप है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यह लीला प्राकृत नहीं है। देश, काल और वस्तुओंके भेदकी समाप्ति तो मनके साथ ही हो जाती है। जब विशुद्ध ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश होता है, तब उसके साथ ही अज्ञानस्वरूप अथवा अज्ञानकार्य प्रकृतिका भी आत्यन्तिक लय हो जाता है उस समय केवल विज्ञानरूप ब्रह्म ही अवशेष रहता है। यद्यपि यह ब्रह्म विशुद्ध तत्त्व है, तथापि प्रकृतिके लयके बादकी स्थिति होनेके कारण तुरीयके नामसे कहा जाता है। जैसे प्रकृति जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूप है, वैसे ही ब्रह्म तुरीयस्वरूप है। ब्रह्ममें अवस्थाएँ नहीं हैं और अवस्थाएँ ब्रह्म नहीं हैं। इस दृष्टिसे देखनेपर ब्रह्म भी एक अवस्था ही सिद्ध होता है। इस ब्रह्मके स्वरूपमें जो स्थित हो गये हैं, उनके लिए भी कदाचित् श्रीराधाकृष्णकी लीला अनुभवका विषय नहीं है, क्योंकि ब्रह्म तो जाग्रत् आदिकी अपेक्षासे तुरीय स्थिति है और श्रीराधाकृष्णमें द्वितीय, तृतीय तुरीयका कोई भेद नहीं है। वे सर्वातीत और सर्वस्वरूप हैं। उनके नाम, धाम, रूप और लीला—सब-के-सब विशुद्ध चेतन हैं। वहाँ किसी भी रूपमें जड़ वस्तुओंका प्रवेश नहीं है। वहाँ भगवान् श्रीराधाकृष्ण ही विभिन्न नाम, रूप और धाम होकर विभिन्न लीलाएँ बनते रहते हैं। हमारी भाषामें जो एक क्षण श्रीराधा हैं, वही दूसरे क्षण श्रीकृष्ण हैं। जो अब श्रीकृष्ण हैं, वही दूसरे क्षण श्रीराधा हैं। वह अपने स्वरूपमें ही दो-से बनकर विहार करते रहते हैं, परन्तु अपनेसे भिन्न दूसरेको कोई भी पहचानता नहीं। यही बात श्रीध्रुवदासजीने अपने एक पदमें कही है—'न आदि न अंत, विहार करैं दोउ, लाल प्रियामें भई न चिन्हारी।' श्रीसूरदासजी भी इन्हीके स्वरमें-स्वर मिलाते हैं—

> सदा एकरस एक अखण्डित आदि अनादि अनूप।
> कोटि कलप बीतत नहिं जानत बिहरत जुगल सरूप॥

श्रीमद्भागवतमें श्रीराधा-नामका उल्लेख क्यों नहीं हुआ, यह प्रश्न उठाते समय भगवान् श्रीराधाकृष्णके स्वरूपपर विचार कर लेना चाहिए। भला, यह भी कभी सम्भव है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी लीलाओंका तो वर्णन हो और श्रीराधाजीकी लीलाओंका न हो? भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनकी सत्-शक्तिसे कर्मलीला, चित्-शक्तिसे ज्ञान-लीला और आनन्द-शक्तिसे विहार-लीला सम्पन्न होती है। यदि किसी भी ग्रन्थमें भगवान्की विहार-लीलाका वर्णन नहीं होता, तो समझना चाहिए कि उस ग्रन्थमें भगवान्के आनन्दांशका वर्णन नहीं हुआ है। श्रीमद्भागवत एक पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें उनकी आनन्द-प्रधान विहार-लीलाका भी पूर्णतः वर्णन है। एक नहीं, अनेक अध्यायोंमें गोपियोंके साथ होनेवाली मधुर-लीलाका अत्यन्त सरसताके साथ उल्लेख किया गया है। वेणुगीत, युगलगीत, कुरुक्षेत्रका प्रसङ्ग और सबसे बढ़कर रास-लीलामें तो आठ प्रधान गोपियों और उनमें एक श्रेष्ठ गोपीका भी सुन्दर वर्णन है। इस प्रकार देखते हैं तो मालूम होता है कि श्रीमद्भागवतमें भगवान्की देश, काल और वस्तुसे परे होनेवाली अप्राकृत मधुर-लीलाका स्पष्टतः उल्लेख है और उसमें गोपियों तथा श्रीराधाजीका भी वर्णन है। जब श्रीमद्भागवतमें उनकी लीलाका वर्णन है ही, तब श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका नाम नहीं है—यह कहकर श्रीमद्भागवतसे श्रीराधाजीकी लीला उड़ायी तो नहीं जा सकती। और इस बातका तो स्वयं ही खण्डन हो जाता है कि श्रीमद्भागवतकी रचनाके समय श्रीयुगलसरकारकी आराधना प्रचलित नहीं थी। इसका निष्कर्ष यह है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीराधातत्त्वका स्पष्ट वर्णन है और श्रीमद्भागवतमें ही क्यों, उपनिषदोंमें भी गान्धर्वी आदि विभिन्न नामोंसे उन्हींके सुयशका सङ्कीर्तन है। रास-लीलाके प्रसङ्गमें अन्य समस्त गोपियोंको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रधान गोपीको एकान्तमें ले गये, अन्ततः उसका कुछ नाम तो होना ही चाहिए।

जब यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका वर्णन है, तब प्रश्न यह रह जाता है कि फिर उनका नाम क्यों नहीं दिया गया? परन्तु यह प्रश्न भी निर्मूल है। क्योंकि श्रीमद्भागवतमें वर्णित अन्य गोपियोंका नामोल्लेख भी तो वहाँ नहीं है। जब किसी भी गोपीका नाम नहीं है, तब श्रीमद्भागवतकारकी यह शैली स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि वे जान-बूझकर किसी भी गोपी या श्रीराधाजीका नाम नहीं लिखना चाहते। जब वस्तुका वर्णन है, तब नाम होना और न होना दोनों ही समान है। इस प्रकार कोई भी वस्तुका तो खण्डन कर सकता नहीं; रही बात नामके सम्बन्धमें विकल्पकी, सो दूसरे पुराणोंसे निश्चित हो ही जाता है।

अवश्य ही इस प्रश्नके लिए अवकाश है कि श्रीमद्भागवतकारने किसी अभिप्रायसे ऐसी शैली अपनायी, जिससे श्रीमद्भागवतमें किसी भी गोपी और श्रीराधाजीका नामोल्लेख न हो सका? परन्तु इस प्रश्नमें सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि यह परबुद्धिविषयक है। कोई साधारण पुरुष भी जब ऐसा काम करने लगता है जिसका उद्देश्य वह न बताये, तब दूसरे लोग उसके सम्बन्धमें तरह-तरहके विकल्प करने लगते हैं और जो बात उसके मनमें नहीं होती, उसकी भी कल्पना कर लेते हैं। सम्भव है, उनमेंसे कोई चतुर पुरुष उनके चित्तका ठीक-ठीक अनुमान कर भी ले, परन्तु होता है वह कोरा अनुमान ही। भगवान् व्यास अथवा श्रीशुकदेवजी

महाराज अनन्त ज्ञानसम्पन्न हैं। उनकी बुद्धि अगाध है; वे किस उद्देश्यसे कौन-सा काम करते हैं—यह वे ही समझ सकते हैं या जिसे वे कृपा करके समझा दें, वह। ऐसी स्थितिमें उन्होंने किस अभिप्रायसे श्रीराधाजी और गोपियोंका नामोल्लेख नहीं किया, इस प्रश्नका उत्तर या तो उनकी कृपासे ही प्राप्त हो सकता है अथवा केवल अपने या दूसरेके अनुमानपर सन्तोष कर लेनेसे।

फिर भी सहृदय एवं भावुक भक्त श्रीशुकदेवजीकी भावनाके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ सोचते ही हैं। महात्माओंसे ऐसा सुना जाता है कि श्रीशुकदेवजी महाराज श्रीराधाजीके महलमें ही लीलाशुक (तोते) के रूपमें रहते थे और उनकी लीलाके दर्शनमें मुग्ध रहते थे। ऐसे श्रीजीके अनन्य लीलाप्रेमी वक्ता थे और श्रीपरीक्षितजी भी उनके वैसे ही प्रेमी श्रोता। यदि उनके कानोंमें उस समय श्रीराधाजीका नाम पड़ जाता, तो वे इतने भावमुग्ध हो जाते कि आगेकी कथा बंद हो जाती और महीनों तक वे समाधिस्थ ही रह जाते। परन्तु समय केवल सात दिनका ही था यही सोचकर श्रीशुकदेव मुनिने श्रीराधानामका उच्चारण नहीं किया। इस सम्बन्धमें एक श्लोक प्रसिद्ध है—

श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा पाण्मासिकी भवेत्।
नोच्चारितमतः स्पष्टं परीक्षिद्धितकृन्मुनिः॥

श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव मुनिने भगवती श्रीराधाका नामोच्चारण क्यों नहीं किया, इसके सम्बन्धमें श्रीव्रजधामके परम रसिक संत श्रीव्यासजीका एक पद है—

परमधन श्रीराधा नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत सुमिरत वारंवार॥
जंत्र मंत्र औ वेद तंत्र में सबै तार कौ तार।
श्रीसुकदेव प्रगट नहिं भाख्या जानि सार कौ सार॥
कोटिक रूप धरे नँदनंदन तऊ न पायौ पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डारि भार में भार।

अभिप्राय यह कि श्रीराधाजीका नाम तारकका भी तारक एवं श्रीकृष्ण-नामसे भी गोपनीय है; क्योंकि श्रीराधानाम भगवान् श्रीकृष्णके जीवनका भी आधार और आत्मा है। पद्मपुराणमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी आत्मा हैं और उनके साथ विहार करनेके कारण ही श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तं ऋषिभिर्गूढवेदिभिः॥

श्रीकृष्णकी आत्मा राधिका और श्रीराधिकाके आत्मा श्रीकृष्ण हैं। दोनोंमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं है। पुराणोंमें स्पष्टरूपसे ऐसे वचन मिलते हैं, श्रीराधाकृष्णमें भेद देखनेवालेको नरककी प्राप्ति बतलायी है। इसलिए श्रीकृष्णके नाममें श्रीराधाका नाम और श्रीराधाके नाममें श्रीकृष्णका नाम अन्तर्भूत है। कहाँ किसके नामका उल्लेख है और कहाँ नहीं है, इस झगड़ेमें न पड़कर किसी भी नामका आश्रय लेना चाहिए और अपने जीवन, प्राण, मन तथा आत्माको श्रीराधाकृष्णमय बना देना चाहिए। ●

श्रीकृष्ण प्रभु

वेदान्ती स्वामी श्रीरँगीलीशरण देवाचार्य

कृष्ण सच्चिदानन्द प्रभु, एक सृष्टि-कर्तार।
शरण-रँगीली रसिक कवि, वेद पुराण पुकार॥ १॥

एकहि कारक पालक हारक, तारक विश्व समाता है।
सर्वशक्ति सर्वज्ञ समन्वय, सर्वकर्म फल-दाता है॥
सुहृद् सच्चिदानन्द भक्तहित रूप अनूप विधाता है।
शरण प्रकाशक शासक सबकर कृष्ण ब्रह्म मुनि गाता है॥ २॥

भक्तनकी भगवान् भक्तिवश भीषण भीति भगाते हैं।
भवँर भवाब्धि परी बेमौका नौका पार लगाते हैं॥
ममता बात रात रत रोते सोते जीव जगाते हैं।
शरण-रँगीली कृष्ण-राधिका-चरण-शरण सुख पाते हैं॥ ३॥

●

कृष्ण-प्रार्थना

माथे किरीट मृदु आननमें हँसी हो,
माला गले करतले मुरली बसी हो।
देव! त्वदीय कटिमें कछनी कसी हो,
मेरे सदा छबि यही मनमें बसी हो॥

आचार्य छोटेलाल त्रिपाठी 'लाल'

वैदिक साहित्यमें व्रजधामकी सूत्ररूपमें चर्चा—

व्रज-धामका वैदिक महत्व

ब्रह्मलीन महामहोपाध्याय श्री पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

भारतवर्षके मुख्य तीर्थस्थानोंमें व्रजधामका विशेप महत्त्व है। आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बाल-लीला-भूमि होनेका गौरव प्राप्त करनेसे यह स्थान सर्वोच्च माना जाता है। हमारे यहाँके तीर्थ-स्थानोंके महत्त्वमें अनेक कारणोंका समावेश रहता है। भगवद-वतार, देव, ऋषि आदिके चरित्रोंसे सम्बन्ध रखना, सत्त्वगुणप्रधान भूभाग होना एवं शास्त्र-चर्चा और यज्ञादिका पवित्र स्थल होना जहाँ तीर्थोंके तीर्थत्व या उनके विशेष गौरवका कारण है वहाँ ब्रह्माण्डकी सृष्टि-प्रक्रियाका एक प्रतिकृतित्वके रूपमें प्रदर्शन करना भी गौरवका विशेप महत्त्वपूर्ण कारण है। यह अन्तिम कारण व्रजधाममें पूर्णरूपसे घटित होकर इसके महत्त्वको वैज्ञानिक सिद्ध कर रहा है। इसीपर इस छोटेसे निवन्धमें संक्षेपसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जाता है।

हमारे इस ब्रह्माण्डमें सात लोक ऊपर और सात अतल-वितल आदि पृथ्वीके स्तर यों चौदह भुवन प्रसिद्ध हैं। इन सात लोकोंका स्मरण द्विजातिमात्र नित्य अपने सन्ध्योपासनमें व्याहृतिरूपसे करते हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। 'भूः' नामसे हमारी आधारभूता यह पृथिवी कही जाती है और 'स्वः' नामसे सूर्यमण्डल। इन दोनोंके मध्यका अन्त-रिक्ष (आकाश या अवकाश-भाग) 'भुवः' नामसे कहा गया है। यह एक त्रिलोकी हुई। इसके पृथिवी और सूर्य इन दोनों मण्डलोंका 'रोदसी' इस द्विवचनान्त शब्दसे श्रुतिमें व्यवहार किया गया है। इसमें सूर्य प्रधान है और अपने उपग्रहों सहित भूमि उसके वशमें उसकी अनुगामिनी है। किन्तु यह सूर्य-मण्डल भी किसी दूसरे प्रधान मण्डलके वशमें रहता हुआ उसका अनु-गामी है। उस प्रधान मण्डलका व्याहृतियोंमें 'जनः' नामसे स्मरण किया गया है और इन दोनों मण्डलोंके मध्यवर्ती अन्तरिक्षका 'महः' नामसे। पुराणोंमें प्रलयके वर्णनमें लिखा गया है कि सूर्यमण्डल विशीर्ण हो जाने पर जब हमारी त्रिलोकीका अवान्तर-प्रलय या नैमित्तिक प्रलय होता है, तब सूर्यमण्डलस्थित देवता, ऋषि, आदि महर्लोक और जनलोकमें जाकर निर्भय हो जाते हैं। यह हमारी त्रिलोकीसे उच्च श्रेणीकी दूसरी त्रिलोकी हुई। इस त्रिलोकीके दोनों मण्डलोंका श्रुतिमें 'क्रन्दसी' इस द्विवचनान्त शब्दसे निर्देश है और उस प्रधान मण्डलको परमेष्ठिमण्डल नामसे कहा गया है जिसका कि अनुगामी हमारा सूर्य है। इस परमेष्ठि-मण्डलसे भी आगे और एक मण्डल है जिसे व्याहृतियोंमें 'सत्यम्' नामसे सर्वोच्च स्थान दिया है। पुराणोंमें भी इसका सत्यलोक नामसे ही व्यवहार है और इन दोनों मण्डलोंके मध्यका आन्तरिक्ष 'तपः' नामसे व्याहृतियोंमें स्मृत है। यह तीसरी त्रिलोकी हुई, इसके मण्डलोंका श्रुतिमें 'संयती' इस द्विवचनान्त शब्दसे व्यवहार है और उस प्रधान मण्डलको स्वयम्भू-मण्डलनामसे प्रसिद्ध किया गया है; क्योंकि वह सबसे प्रथम स्वयंजात है। उसका उत्पादक

कोई दूसरा नहीं। यह हुआ सप्तलोकात्मक एक ब्रह्माण्ड। इसमें चार मण्डल और तीन अन्तरिक्ष हैं; किन्तु हमारी पृथिवी और सूर्यके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है उसमें प्रधान रूपसे चन्द्रमण्डलका प्रचार है, उससे हमारी पृथिवीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऋतु, वनस्पति आदिके उत्पादनमें वह चन्द्रमण्डल प्रधान भाग लेता है, इस कारण उसे भी मण्डलोंकी श्रेणीमें ही ले लिया जाता है। यद्यपि ऊपरके दोनों अन्तरिक्षोंमें भी वृहस्पति, वरुण आदि बहुत बड़े-बड़े मण्डल हैं जो हमारे सूर्यसे भी बहुत बड़े हैं किन्तु हमारी पृथिवीसे उनका साक्षात् घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता, सूर्य, चन्द्र, आदिके द्वारसे ही होता है, अतः उन्हें मण्डलोंकी श्रेणीमें नहीं गिना जाता। इस ब्रह्माण्डमें पूर्वोक्त पाँच ही प्रधान मण्डल हैं, जिन्हें इस ब्रह्माण्डकी वल्शा अथवा शाखा कहा जाता है।

मनुस्मृतिके आरम्भमें सृष्टिक्रमका दिग्दर्शन कराते हुए संक्षेपमें कहा गया है कि आज यह अति विस्तृत दिखायी देनेवाला जगत् उत्पत्तिसे पूर्व घोर तममें निमग्न था, न इसका प्रत्यक्ष हो सकता था न अनुमान। कोई धर्म प्रस्फुट न होनेके कारण कोई शब्द भी इसे नहीं बता सकता था। मानों सब कुछ प्रसुप्त दशामें था।

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

उस अन्धकारको दूर करनेके लिए सबसे पूर्व स्वयम्भूका प्रादुर्भाव हुआ। इनका और कोई उत्पादक नहीं। ये सबसे पूर्व प्रादुर्भूत हुए इस कारण स्वयम्भू कहलाये। यह भगवान्का ही एक रूप था। इसने आगे सृष्टिविस्तारकी इच्छासे सबसे पूर्व अपने शरीरसे 'अप्' तत्त्वकी सृष्टि की। उसी अप्तत्त्वमें जो बीज-निधान किया वह ब्रह्माण्ड बना, इत्यादि। यह वेदोक्त सृष्टिक्रमका अनुवाद है और पुराणोंमें भी इसी प्रकारका सृष्टिक्रम बहुधा देखा जाता है। इससे तात्पर्य यही निकलता है कि स्वयम्भूमण्डलमें सृष्टिका आरम्भ नहीं होता। उनके ज्ञान और इच्छा-रूप तपके द्वारा जनलोकसे सृष्टि चलती है, जिसे भगवान् मनुने 'अप्' तत्त्व कहा है। उसकी तीन अवस्था श्रुतियोंमें वर्णित हैं—सोम, वायु और जल। अत्यन्त सूक्ष्म अवस्थामें वह सोम कहलाता है। किंचित् स्थूलता होनेपर वायुरूपता उसमें आ जाती है और अधिकस्थूल होनेपर जल हो जाता है। अस्तु प्रथम अवस्था रूप जो सोमतत्त्व बताया गया, वह सर्वत्र व्यापक है और प्राणिमात्रका जीवनप्रद सोमतत्त्व है, ऐसा श्रुतिका सिद्धान्त है। अव्यय पुरुष भगवान्की कला-रूप मन, प्राण और वाक् इसी सोमतत्त्वमें प्रतिबिम्बित होते हैं और यही सोमरस गोनामसे भी कहा जाता है, क्योंकि गो नाम किरणोंका है और प्रकाशके सम्बन्धसे यही गोतत्त्व प्रज्वलित होकर किरणरूप बनता है। एक वेद मन्त्रमें सोमकी स्तुति इस प्रकार की गयी है।

त्वमिमा ओषधीः सोम सर्वाः रुचामपोऽजनयस्त्वमिमा गाः।
त्वमातनोः सर्वम्न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वितममैववर्थ॥

अर्थात् 'हे सोम! तुमने ही सब ओषधियोंको उत्पन्न किया है। तुम ही जलतत्त्वके उत्पादक हो और तुम ही गौओंको उत्पन्न करते हो, तुम इस विशाल अन्तरिक्षको विस्तृत

करते हो अर्थात् सब अन्तरिक्षमें व्याप्त रहकर उसे विस्तृत रूप देते हो और तुम ही दीप्ति द्वारा अन्धकारको दूर करते हो।' इस गोतत्त्व नामक सोमतत्त्वका प्रथम प्रादुर्भाव इसी जनलोक नामक परमेष्ठिमण्डलमें हुआ है। इस जन, तप और सत्यलोकसे भी ऊपर व्रजधाम या गोलोककी स्थिति है। यह सर्वव्यापक, सर्वोपरि तथा सर्वातीत है। सदाशिवलोक तथा वैकुण्ठधाम भी इससे नीचे हैं (द्रष्टव्य—ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड) एक वेदमन्त्रमें यजमानको इसी लोकमें पहुँचानेकी आशा प्रकट की गयी है। यह मन्त्र निरुक्तमें भी उद्‌धृत है :—

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥

ऋत्विक् कहते हैं कि 'हे यजमान ! और यजमानपत्नी ! हम तुम्हारे जानेके लिए उस लोककी कामना करते हैं जहाँ बड़े-बड़े सीगोंवाली और निरन्तर गमनशील गौएँ विराजमान हैं। इसी लोकमें सबके द्वारा स्तुति किये गये और सबकी कामनाओं की वर्षा करनेवाले भगवान्‌का परमपद प्रकाशित होता है।' हमारे एक मान्य पण्डितजी कहा करते थे कि यहाँका वृष्णः पद वृष्णेः का ही परोक्ष प्रतिपादक होता है और वृष्णि पद भगवान् कृष्णका वाचक सुप्रसिद्ध है इसलिए स्पष्ट है कि यह मन्त्र श्रीवृन्दावनका ही वर्णन कर रहा है वृष्णेः कहिये, या कृष्णः कहिये मन्त्रमें गोलोकका वर्णन है, इसमें कोई ननु, न च, नहीं हो सकता। सबके आराध्य भगवान् विष्णुकी चार रूपोंमें उपासना श्रुति-पुराणादिमें वर्णित है और उनके चार धाम माने गये हैं।

१. वैकुण्ठनाथ विष्णु।
२. क्षीर समुद्रशायी।
३. श्वेतद्वीपाधिपति शुक्ल वर्ण।
४. श्रीकृष्ण-रूप गोलोक धामके अधिपति।

कहना नहीं होगा कि चारों एक ही रूप हैं, किन्तु उपासकोंकी रुचिके अनुसार चार स्थानोंमें चार रूपोंमें दर्शन देते हैं। इन स्थानोंका भी तत्त्व-विचार करनेसे इनकी एक-रूपता ही सिद्ध होती है। वैकुण्ठको महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने अक्षर तत्त्व कहा है, जो अव्यय पुरुषका धाम है और सर्वव्यापक है। क्षीर समुद्र भी 'अप्' तत्त्वका आधार-भूत सर्वव्यापक है एवं तमको दूरकर प्रकाशित होनेके कारण इस ब्रह्माण्डको ही श्वेतद्वीप कहते हैं और पूर्वोक्त प्रकारसे गोलोक भी सर्वत्र व्यापक है। भगवान्‌के रूप और उनकी शक्तियाँ भी मूल तत्त्वरूपसे एक ही हैं; किन्तु भक्तोंकी रुचिके अनुसार वे भिन्न-भिन्न रूपोंमें दर्शन देते हैं। गोलोकमें राधारूपा ह्लादिनी शक्तिसे युक्त आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णका द्विभुजरूप सदा विराजमान रहता है।

यह धाम भगवान् श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय है और इससे वे किसी कालमें भी वियुक्त नहीं होते। उस धामकी महिमा पुराणोंके समान श्रुतियोंमें भी वर्णित है और विचार करनेपर उसका वैदिक तत्त्व भी स्फुट हो जाता है। भगवत्कृपासे ही उस व्रजधामका निवास प्राप्त होता है जिसकी पूर्वोक्त वेदमन्त्रमें अभिलाषा की गयी है। भगवान् सबपर कृपाकर व्रजधामका आनन्द लेने की सबको शक्ति दें।

निर्गुण, सगुण, जीव और जगत—

सबकी ब्रह्मरूपता—

परमेश्वरके समग्र स्वरूप, अवतार तथा धारणाके क्रमपर विचार

महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज

★

(१)

प्रत्येक दार्शनिक प्रस्थान और धर्म-सम्प्रदायने अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार जीव और ईश्वरका निरूपण करनेकी चेष्टा की है। श्रीमद्भागवतमें भी भिन्न-भिन्न प्रसंगोंमें इस प्रकारकी आलोचना दिखायी देती है। इस आलोचनाका अवलम्बनकर आचार्योंने एक विराट् साहित्यकी सृष्टि की है। हम उस सम्बन्धमें कोई मतामत प्रकट न कर केवल मूल ग्रन्थके अभिप्राय और तात्पर्यकी ओर लक्ष्य रखते हुए यथासम्भव संक्षेपमें दो चार बातें कहनेकी चेष्टा करेंगे। श्रीमद्भागवतमें उपदिष्ट तत्त्वकी यथार्थरूपसे व्याख्या करनेकी योग्यता रखनेवाले पुरुष विरले ही हैं। क्योंकि प्रसिद्धि है :—

ब्रह्मानुभवसम्पन्नाः शास्त्रज्ञाश्चानसूयवः।
तात्पर्यरससारज्ञास्त एवात्राधिकारिणः॥

अर्थात् 'जो ब्रह्मानुभूतिसम्पन्न, शास्त्रोंके मर्मवेत्ता, असूयारहित तथा तात्पर्यज्ञ हैं, वे ही भागवतके गूढ़ार्थको प्रकाशित करनेके अधिकारी हैं।' वर्तमान निबन्ध उस प्रकारकी चेष्टा नहीं है। यह केवल महापुरुषोंके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए अपनी व्यक्तिगत जिज्ञासाकी निवृत्तिके लिए तनिक-सा उद्यममात्र है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ (भा० २-९-३२)

१. ऋग्वेदसंहिता (८-७-१७) में इस अवस्थाका—'नासदासीन्नो सदासीत् तदानीम्। कहकर वर्णन किया गया है।

अर्थात् 'सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था—दूसरी कोई वस्तु नहीं थी। तब मैं था केवलमात्र, कोई क्रिया नहीं थी। तब सत् अथवा कार्यात्मक स्थूलभाव नहीं था, असत् या कारणात्मक सूक्ष्म-भाव भी नहीं था, यहाँ तक कि दोनोंका कारणभूत प्रधान भी अन्तर्मुखरूपसे मुझमें लीन था। सृष्टिके बाद भी मैं ही हूँ—यह प्रपञ्चसम्भार अथवा विश्व भी मैं हूँ। यह वस्तुतः मुझसे भिन्न नहीं है। फिर, प्रलयकालमें सबके लीन हो जानेपर एकमात्र मैं ही अवशिष्ट रहूँगा। इसलिए मैं अनादि, अनन्त, अद्वितीय और परिपूर्ण स्वरूप हूँ।'

इससे ज्ञात होता है निर्गुण, सगुण, जीव और जगत् सभी ब्रह्मरूप हैं।[1]

(२)

मैं और भी स्पष्टरूपसे विभिन्न दृष्टिकोणोंसे इस विषयको समझानेकी चेष्टा करूँगा। चैतन्य ही ब्रह्म अथवा भगवान्का स्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु यह जब तक सत्त्वगुण-रूप उपाधिद्वारा अवच्छिन्न नहीं होता तब तक अव्यक्त और निराकार रूपमें विद्यमान रहता है। इसीका साधारणतः निर्गुण ब्रह्मके रूपमें वर्णन किया जाता है और जब यह सत्त्वावच्छिन्न होता है तब यह साकार अथवा सगुण रूपमें अपनेको प्रकट करता है। वास्तवमें निराकार और साकार एक ही अखण्ड वस्तु है। चिद्वस्तु स्वरूपतः अव्यक्त है, वह प्रकृतिके सत्त्वगुणके सम्बन्धसे व्यक्त होती है। व्यक्त होकर भी वह एक ही रहती है। रजोगुणके संयोगके कारण वह एक सत्ता विचित्र, नानारूपोंमें आभासित होती है। उसी प्रकार तमोगुणके सम्बन्ध-वश नानात्वका तिरोधान होता है। यह जो अव्यक्त सत्ताकी व्यक्तता है, इसको स्थिति कहते हैं—यह विशुद्ध सत्त्वगुणका व्यापार है। इसमें जो बहुत रूप फूट उठते हैं, उसीको सृष्टि कहते हैं। यह अन्तर्लीन प्रकृतिका प्राकट्य ही सृष्टिका नामान्तर है। कालान्तरमें वह बहुरूप उपसंहृत होता है। इसीको संहार कहते हैं। पहले स्थिति, उसके बाद सृष्टि और संहार। निर्मल सत्त्वके ऊपर रज और तम आकर्षण और विकर्षणके रूपसे, उन्मेष-निमेषके रूपसे अथवा संकोच-प्रसारके रूपसे पारी-पारीसे क्रीडा करते रहते हैं।

हमने जो भगवान्के सत्त्वावच्छिन्न साकार स्वरूपकी बात कही है वह सत्त्वगुणके तारतम्यवश मूलतः एक होकर भी विभिन्न रूपोंसे प्रतीत होता है। सत्त्व विशुद्ध और मिश्र भेदसे दो प्रकारका है। मिश्रसत्त्व एक गुणके मिश्रण अथवा दो गुणोंके मिश्रणवश दो प्रकारका है। एक गुणके मिश्रणवश मिश्रसत्त्व रजोमिश्र और तमोमिश्र भेदसे दो प्रकारका है। अतएव भगवान्का साकाररूप कुल चार प्रकारका पाया जाता है। जैसे—

प्रथम—शुद्धसत्त्वावच्छिन्न चैतन्य। इसको विष्णु कहते हैं।

द्वितीय—रजोमिश्रसत्त्वावच्छिन्न चैतन्य। इसका दूसरा नाम ब्रह्मा है।

---

१. आचार्य वासनने इसीलिए श्रुतिकल्पलताके उपोद्घातमें कहा है—'निर्गुणं सगुणं जीवसंज्ञितं जगदात्मकम्। एतच्चतुर्विधं ब्रह्म श्रीमद्भागवते स्फुटम्।' वे स्वरूपतः निर्गुण मायायोगसे सगुण अविद्याके कारण प्रतिबिम्बरूपसे जीव तथा विवर्तरूपसे जगत् हैं।

तृतीय—तमोमिश्रसत्त्वावच्छिन्न चैतन्य। इसकी शास्त्रीय संज्ञा रुद्र हैं।

चतुर्थ—बराबर रज और तम दोनोंसे मिश्रित सत्त्वावच्छिन्न चैतन्य। यही पुरुष है।

जगत्‌की स्थिति, सृष्टि और संहार रूप व्यापारमें विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र ये तीन निमित्त है एवं सर्वत्र पुरुष ही उपादान रहता है। किन्तु ये चार, ब्रह्मके ही साकार रूप हैं, यह पहले कहा जा चुका है। इसलिए भागवतमतानुसार ब्रह्म ही जगत्‌का निमित्त और उपादान रूप उभय कारण है फिर कार्यात्मक जगत् भी ब्रह्म ही है। अतएव ब्रह्म स्वयं ही कार्य, स्वयं ही उपादान और स्वयं ही निमित्त है। निराकार दृष्टिसे यदि देखा जाय तो वे कार्य भी नहीं हैं, कारण भी नहीं हैं। वे जो हैं वही हैं एवं सदा ही वही रहते हैं। सृष्टि आदि इन्द्रजालकी नाई आविर्भूत होकर अज्ञानदृष्टिसे उनमें केवल आरोपित होते हैं। शुद्धज्ञानदृष्टिसे यह आरोप भी आकाशकुसुमके तुल्य अलीक हैं।

उनका निराकाररूप ही परम रूप है। यह गुणातीत, कालके द्वारा अपरिच्छिन्न, निर्विकार, शान्त और अद्वय है—यही विष्णुका परम पद है।

> न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे।
> न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान् प्रधानम्॥
> परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद् यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः।
> विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे॥
>
> (श्रीमद्भा० २-२-१७-१८)

अर्थात्—'जहाँ देवतागणोंके नियामक कालका कोई प्रभुत्व नहीं है, अतएव देवताओंके जागतिक प्राणियोंके नियन्त्रणकारी होनेपर भी वहाँ उनका प्रभाव रह नहीं सकता। जहाँ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण नहीं हैं, जहाँ अहंकारतत्त्व (विकार) महत्तत्व तथा प्रकृतितत्त्व नहीं है। जिस परमपूज्य भगवत्स्वरूपका योगी लोग 'यह नहीं, यह नही' इस प्रकार विचारके द्वारा तद्भिन्न पदार्थोंका परिहार करनेकी इच्छाकर विषयासक्तिवर्जनपूर्वक अनन्यप्रेमपूर्ण हृदयसे पद-पदपर आलिङ्गन करते रहते हैं—वही विष्णुका परमपद कहा गया है।' इस परमरूपके वर्णनप्रसंगमें ही देवकीने स्तुति करते हुए कहा था—

> रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
> सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः॥
>
> (भागवत १०-३-२४)

अर्थात् 'प्रभो, वेदमें आपका जो रूप अव्यक्त और सबके आदिभूतरूपसे वर्णित है, जो व्यापक ज्योतिःस्वरूप है, जो गुणहीन और विकारहीन है, जो निर्विशेष और निष्क्रिय सत्तामात्र है, वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं।

इस निर्गुण परमेश्वरके आदि अवतार ही पुरुष हैं—

'आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य' (भागवत २-६-४२)

परमेश्वरके जो अंश प्रधान-गुणभागी हैं अर्थात् प्रकृति और प्रकृतिजन्य कार्यका वीक्षण, नियमन और प्रवर्तन आदि करते हैं, जो स्वरूपतः एक रहकर भी नाना प्रकारोंसे अपने विग्रहांशका विभाग कर निखिल प्राणियोंका विस्तार करते हैं, जो माया-सम्बन्धरहित होकर भी मायासे सम्बद्ध-जैसे प्रतीत होते हैं, जो सर्वदा चित्-शक्तियुक्त हैं, वे ही पुरुष कहलाते हैं। इन पुरुषसे ही भिन्न-भिन्न अवतारोंकी अभिव्यक्ति होती है। ये संकल्पमात्रसे सब कार्य सम्पन्न करते हैं, इसलिए प्रकृति और प्राकृत जगत्में प्रविष्ट होनेपर भी अचिन्त्यशक्ति होनेके कारण उनसे उनका स्पर्श नहीं होता, वे सदा शुद्ध ही रहते हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा गया है—

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः॥

अर्थात्—'आदिदेव नारायण प्रकृतिमें अधिष्ठित होकर पाँच महाभूतोंकी सृष्टि करते हैं और उनसे ब्रह्माण्ड नामक विराट-पुरी या देहकी रचना करते हैं। तदनन्तर उसमें स्वांशसे अथवा जीवकला द्वारा प्रविष्ट होकर 'पुरुष' नाम प्राप्त करते हैं।' यह दृश्यमान त्रिभुवन-संनिवेश उनका शरीर है, समष्टि और व्यष्टि जीवोंकी दोनों इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ) उनकी दिग्, वात आदि इन्द्रियोंसे उत्पन्न हैं, जीवका ज्ञान उनके स्वरूपभूत सत्त्वसे जन्य है एवं जीवके बल (देहशक्ति), तेज (इन्द्रियशक्ति) और क्रिया उनके प्राणसे उत्पन्न हैं। सत्त्वादि गुणोंके द्वारा वही विश्वकी स्थिति आदिके आदिकर्ता हैं—विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र नामक तीन गुणावतार प्रयोज्यकर्तामात्र हैं[1]।

भागवतमें (८-२०-२१-३३) वामनके रूपके वर्णनके प्रसंगमें पुरुषके रूपका वर्णन है। यह त्रिगुणात्मक रूप है ऐसा वहाँ उल्लिखित है। उसमें भू, आकाश, द्युलोक, पाताल, मेघ, तिर्यग्योनि, मनुष्य, देवता, ऋषि—आदि स्थावर, जंगम सभी पदार्थ दिखायी दिये थे। ऋत्विक् आचार्य और सदस्य वर्गके साथ दैत्यराज बलिको महाविभूतिसम्पन्न श्रीहरिमें गुणात्मक देहमें त्रिगुणमय विश्व दिखायी पड़ा था। उसमें उन्हें पञ्चभूत, दस इन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ, चार अन्तःकरण और जीवकी सत्ता प्रत्यक्ष दिखायी दी थी—

कायें बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत्।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम्॥
(भागवत ८-२०-२२)

---

१. आदिकर्ता शब्दका यह व्याख्या श्रीधरसंमत है। हेमाद्रि कैवल्यदीपकामें कहते हैं कि आदिकर्ता = प्रथम कारण या उपादान अर्थात् पुरुष है। परवर्ती कारण = निमित्त अर्थात् विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र हैं।

अर्जुनने जैसे श्रीभगवान्द्वारा प्रदत्त दिव्य चक्षुकी सहायतासे उनके विश्वरूपका दर्शन किया था, बलिको भी उसी प्रकार भगवत्कृपासे दिव्य चक्षु प्राप्त हुआ था, यह कहना अनावश्यक है।

भगवान्का परमरूप देखनेके पूर्व यह विश्वरूप-दर्शन अधिकांश साधकोंको होता है। बुद्धदेवको भी सम्यक् संबोधि प्राप्त होनेके पहले इस प्रकारके विराट्रूपके दर्शन हुए थे, इस बातका अश्वघोषने उनके चरित्रग्रन्थ (बुद्धचरित) में उल्लेख किया है—

'ददर्श निखिलं लोकमादर्श इव निर्मले।'

पुरुषावतारके अनन्तर गुणावतारका विषय आलोचनायोग्य है। पूर्ववर्णित आद्यपुरुष सर्वप्रथम जगत्की सृष्टिके लिए रजोगुणके अंशसे ब्रह्मा हुए, स्थितिके लिए सत्त्वगुण के अंशसे धर्म और ब्राह्मण गणोंके रक्षक यज्ञपति विष्णु हुए एवं संहारके लिए तमोगुणके अंशसे रुद्र हुए। तीन गुणोंका आश्रयणकर इस प्रकार एक पुरुष ही तत् तत् नाम धारण करते हुए जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलयकी व्यवस्था करते रहते हैं। इनमेंसे ब्रह्माका वाहन हंस है, विष्णुका वाहन गरुड (सुपर्ण) है एवं रुद्रका वाहन वृषभ है। इनके कमण्डल, चक्र, त्रिशूल आदि अपने विशिष्ट चिह्न हैं (भागवत ८-१-२४)।

शुद्धसत्त्वात्मक विष्णुरूपका विशेष वर्णन भागवतमें दूसरे स्थलमें है (१०-८९-५४—५६)। इनका श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ द्वारकाके मृत ब्राह्मणकुमारको लानेके लिए जाकर गर्भोदकमें दर्शन किया था। श्रीकृष्ण और अर्जुनने दिव्य रथपर आरूढ होकर पश्चिम-की ओर प्रस्थान किया। एवं सप्तद्वीप, सप्तसागर और लोकालोक पर्वतको लांघकर घनघोर अन्धकारमें प्रवेश किया। उस निविड़ अन्धकारमें दिव्य अश्वोंकी भी गतिका रोध हो गया था। तब कृष्णके आदेशसे हजार सूर्योंकी तरह अत्यन्त उज्ज्वल उनका सुदर्शनचक्र किरणें बिखेरकर अन्धकारराशिको छिन्न-भिन्न करते हुए तीव्र वेगसे आगे-आगे चलने लगा एवं उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्गपर अग्रसर होता गया। इस तरह उन्होंने उस विपुल अन्धकारका भेद कर उसके परले पार स्थित महाज्योतिके दर्शन किये[1]। अर्जुनने उस ज्योतिकी झलक सहन न कर सकनेके कारण आँखे मूँद लीं। उसके पश्चात् घोर वायुके वेगसे विक्षुब्ध विशाल जलराशि दिखाई दी[2]।

---

१. इसकी भागवतज्योतिके नामसे श्रीधरस्वामीने व्याख्या की है।

२. यह जो गर्भोदक कहा गया है इसका हेमाद्रिने उल्लेख किया है। गर्भोदकके अवस्थान आदिके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगम-साहित्यमें मिलता है। सप्त-द्वीपोंमें अन्तिम द्वीप 'पुष्कर' है यह स्वादुजलराशिसे परिवेष्टित है। इस स्वादुजल-समुद्रके पार सुवर्णभूमि है। यह देवताओंका क्रीड़ास्थल है। इसके अनन्तर वलया-कार लोकालोक पर्वत है। लोकालोकके भीतरकी ओर सूर्य प्रकाशित होता है,

इस तटरहित उत्तालतरङ्गोंसे व्याप्त समुद्रमें एक अत्यन्त दीप्तिमान् विशाल भवन दृष्टिगोचर हुआ। यही महाकालपुर है (श्रीधर-मत से)। वह भवन हजार देदीप्यमान मणिरचित स्तम्भोंसे सुशोभित था। वहाँ हजार मस्तकवाले भगवान् शेषनाग विराजमान थे, जिनके प्रत्येक मस्तकपर उज्ज्वल मणिमय फण शोभित थे एवं शरीर अत्यन्त भयानक और अद्भुत था। भगवान् महाविष्णु इस शेषनागरूप शय्यापर सोये हुए थे। उनकी घने मेघकी तरह नीली शरीरकान्ति, पीले वस्त्र, प्रसन्न मुखमुद्रा, सुन्दर और विशाल नेत्र, मणिरचित किरीट और कुण्डल, बिखरी देदीप्यमान केशराशि, श्रीवत्सचिन्ह, कौस्तुभ और वनमाला, भूषण तथा लम्बायमान आठ भुजाएँ शोभित हो रही थीं। उनके चारों ओर सुनन्द, नन्द आदि पार्षदगण और मूर्तिमान् चक्र आदि आयुध विराजमान थे। मूर्तिमती श्री, कीर्ति और अजा तथा सब ऋद्धियाँ उनकी सेवा कर रही थीं।

उनका जो यह रूप वर्णित हुआ है, यही उनका एकमात्र रूप नहीं है। वे इच्छारूप होनेके कारण भक्तके इच्छानुसार आकार धारण करते हैं। जब जो भक्त उनके जिस रूपका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं वे उनके निकट उसी रूपसे प्रकट होते हैं। भागवतमें कहा है—

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद् वपुः प्रणयसे तदनुग्रहाय॥

अर्थात् 'हे विष्णो। तुम पुरुषोंके भक्तियोगसे शोधित हृदयकमलमें अभिव्यक्त होकर अवस्थित होते हो। तुम्हारे पथ अथवा स्वरूपस्थितिका परिचय एकमात्र वेदसे ही अवगत होता है। अतएव भक्तवृन्द तुम्हारे जिस-जिस रूपका अपने मनमें चिन्तन करते हैं, तुम उनके अनुग्रहके लिए उस रूपसे आविर्भूत होते हो।'

भागवतमें दूसरे स्थल (३-२४-३१) पर लिखा है कि भगवान् 'अरूपी हैं', वास्तवमें उनका कोई रूप नहीं है अर्थात् उनका स्वतःसिद्ध रूप नहीं है। परन्तु अपने भक्तोंमें जिसे जो रूप अच्छा लगता है वही उनका रूप जानना चाहिए।

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः॥

बाहरकी ओर सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँचता। सूर्य मेरु और लोकालोकके मध्यमें है। सूर्यलोकके बाहर घोर अन्धकार रहता है। उसे देखना नहीं बनता। उसके बाद जीवहीन गर्भोदक नामक समुद्रराज है। सात समुद्र तथा सप्तद्वीपमय पृथिवी इसके गर्भमें स्थित है। गर्भोदकके बाहर ही ब्रह्माण्डरूपी कटाह है। यही प्रचलित मत है। सिद्धयोगीश्वरतन्त्रके मतानुसार लोकालोकके निकट और गर्भोदक समुद्रके तीरपर काँपेयमण्डल अवस्थित है। हजारों सिद्ध पक्षियोंके मण्डलसे वेष्टित होकर पक्षिराज गरुड़ उस स्थानमें निवास करते हैं।

यहाँ तक हमने पुरुषावतार और गुणावतारोंकी आलोचना की है। मुमुक्षुपुरुष समाधि-अवस्थामें उनके दर्शन पाते रहते हैं। किन्तु जिन साधकोंका चित्त अभी व्युत्थानावस्थाका उल्लंघन कर समाहित नहीं हुआ। उनके लिए और एक प्रकारके अवतारके ध्यान और चिन्तनकी व्यवस्था है। इनके दिव्य जन्म और अलौकिक नाना प्रकारके कर्मोंको श्रद्धाके साथ भावना करनेपर साधकके विघ्ननाश और इष्टप्राप्तिमें सहायता होती है। ये सब अवतार कल्पावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार और स्वल्पावतारके भेदसे चार प्रकारके हैं। वाराह आदि कल्पावतारोंका वर्णन द्वितीय स्कन्धके सातवें अध्यायमें दिखलायी देता है। चौदह मन्वन्तरोंसे सम्बद्ध चौदह मन्वन्तरावतारोंका विवरण अष्टम स्कन्धके १म, ५म, १२श, और १३श अध्यायोंमें उपलब्ध होता है। शुक्ल आदि वर्गोंके भेदसे युगावतार चार हैं। उनके अतिरिक्त सृष्टिव्यापारमें ब्रह्मा, प्रजापतिगण, ऋषिगण और तप, स्थिति-व्यापारमें धर्म, यज्ञ, मनु, अमर और अवनीश या राजा एवं संहारकार्यमें अधर्म, हर और मन्युवश (सर्प)—ये सब मायाविभूतिगण भी अवतारोंमें परिगणित होते हैं।

गुणातीत और निराकारस्वरूप ही भगवान्का परम रूप है, यह पहले कहा जा चुका है। किन्तु इस रूप की धारणा अत्यन्त कठिन है। प्रथम भूमिमें त्रैगुण्यविषयक धारणा करनी चाहिए। यही उनका पुरुषरूपमें चिन्तन है। इससे चित्तके कुछ स्थिर होनेपर द्वितीय भूमिमें द्वैगुण्य-धारणा करनी चाहिए। यह ब्रह्मा और रुद्रदेवके रूपका चिन्तन है। इनका एक साथ ध्यान असम्भव नहीं है। यद्यपि ध्यानकालमें दो मूर्तियाँ रहती हैं तथापि दोनोंकी अभिन्न भावना करनी चाहिए। इस द्विविध धारणाके द्वारा रजोगुण और तमोगुण अभिभूत होनेपर मुमुक्षु पुरुषको सत्त्वगुणपर विजय प्राप्त करनेके लिए तृतीय भूमिमें शुद्धसत्त्वमय विष्णुकी धारणा करनी चाहिए। इसके अनन्तर चतुर्थ भूमिमें निर्गुण धारणाका अधिकार प्राप्त होता है। मनुष्यकी बुद्धि स्थूल एवं सूक्ष्म क्रमका आश्रय करके अर्थका स्पर्श करती है। इसलिए त्रिगुणात्मक भगवत्स्वरूपमें मनको समाहितकर स्थिर कर लेना चाहिए। तदनन्तर द्विगुणात्मक रूपमें, उसके पश्चात् शुद्धसत्त्वमय रूपमें एवं अन्तमें निर्गुण सूक्ष्म ब्रह्ममें प्रविष्ट होकर नित्य निरतिशय रूपका ध्यान करते हुए कृतार्थ होना चाहिए।

अवतार-भेद तथा श्रीकृष्णके पूर्णत्वपर एक दृष्टि

ईश्वरावतार और श्रीकृष्ण

श्रीगोपालसिंह, विशारद, वकील

★

निराकार ब्रह्मका साकार स्वरूप भगवान् विष्णु जब लोकहितार्थ अन्य किसी साकार-रूपसे प्रकट होते हैं, उसे ईश्वरावतार कहते हैं। किन्तु उस लीलाका उद्देश्य व्यक्तिगत किसी प्रेमी भक्तकी रक्षा किंवा विश्व-कल्याणकी कामना होती है। इस प्रकारके भगवत्-चरित्रको ही अवतार कहा जाता है। अतः भगवान्के अवतारकी महिमाका अन्त नहीं है। सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं; अणु-अणुमें भी वह समाया हुआ है। इस अवस्थामें निराकारसे साकार रूपमें अवतार होना तथा संसारमें जन्म लेकर लीला करना कैसे सम्भव है, उसपर ही यहाँ कुछ विचार व्यक्त करना है।

परमात्माकी शक्ति या कला सर्वत्र व्याप्त है। उसी शक्तिके देश-कालानुसार विशेष रूपसे किसी केन्द्र द्वारा विकास होनेको ही अवतार कहते हैं। यथा—छान्दोग्योपनिषदमें—'षोडशकलः सौम्य पुरुषः।' तैत्तरीय ब्राह्मणमें भी—'षोडशकलो वै पुरुषः।' अर्थात् परमात्मा सोलह कला शक्तिसे पूर्ण हैं; उनकी कला यहाँ जीव जगत्में धीरे-धीरे प्रकट होती है, यथा—छान्दोग्य में—

षोडशानां 'कलानामेका कलातिशिष्टाभूत् साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वाऌीत्।'

सोलह कलाओंमेंसे एक कला उद्भिज योनि द्वारा प्रकट होती है; दूसरी योनि स्वेदजमें, अर्थात् कृमि-कीटोंमें दो कला, तीसरी योनि पशुओंमें चार कला तकका विकास होता है; इसके अनन्तर मनुष्य योनिमें पाँच कलासे आठ कला तक भगवत्-शक्तिका विकास होता है; यथा—साधारण मनुष्योंमें पाँच कलासे ५½ कला, देश-नेता, धर्म-नेता आदि विभूतियुक्त प्रतापी पुरुषोंमें ७-८ कला इत्यादि इसके पश्चात् यदि किसी शरीर अथवा केन्द्रके द्वारा ८ से अधिक भगवत्-शक्तिका विकास हो; तो वह असाधारण केन्द्र अवतार कहलाता है। ९ कलासे १५ कला तक अंशावतार कहा जाता है; और १६ कलाका पूर्णावतार कहलाता है। इस प्रकार शक्तिविकासमें यह नियम नहीं है कि मनुष्य-शरीर द्वारा ही ऐसी असाधारण शक्तिका विकास हो; देशकालानुसार अण्डज-योनि, मनुष्य-योनि किसी भी योनिके शरीर द्वारा ऐसी शक्ति प्रकट हो सकती है। इस नियमके अनुसार भगवान्के २४ अवतार होते हैं। इनमेंसे भी १० अवतार मुख्य हैं। यथा—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्किर्दश स्मृताः॥

इस प्रकारसे अवतार होते क्यों हैं, इस प्रश्नका उत्तर गीतामें दिया गया है। यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अर्थात्—जब-जब धर्मपर ग्लानि तथा अधर्मकी वृद्धि होती है भगवान् अवतार लेकर आते हैं। और भी—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ॥

अर्थात् साधुओंकी रक्षा, पापियोंका नाश तथा धर्मप्रतिष्ठाके लिए युग-युगमें भगवान्‌का अवतार होता है। वेदमें भी अवतार विषयक बहुतसे मन्त्र मिलते हैं। यथा—ऋग्वेदके मण्डल ६ अं० ४ सूक्त ४७ मंत्र १८ में **'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश।'** अर्थात्—भगवान् मायाके द्वारा अनेक रूप धारण करते हैं; उनके सैकड़ों रूप हैं किन्तु उनमें १० अवतार मुख्य हैं। इस स्थलपर हम केवल कृष्णावतारपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

उक्त अवतारोंमेंसे अष्टम अवतार बलराम और कृष्णावतार हैं, इनमेंसे बलराममें अंश-कलाका विकास हुआ था, और श्रीकृष्णमें पूर्णकलाका; यथा—**'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'** अर्थात्–और सब अंशावतार हैं, किन्तु कृष्णमें पूर्ण कलाओंकी स्थिति होनेसे वे साक्षात् ईश्वर (भगवान्) रूप हैं। इस प्रकार अंशकला और पूर्णकलामें भगवान्‌के प्रकट होनेका क्या कारण है? इस विषयपर द्वापर और कलियुगके उस सन्धिकालकी भीषणताके विषयमें थोड़ा-सा विचार करने पर ही पता लग सकता है। उस समय चारों ओरसे असुरोंके अत्याचारसे धरा भाराक्रान्त हो उठी थी, एक ओर महापापी कंसने शिशु-हत्या, गोहत्या, एवं धर्मनाश करनेके अतिरिक्त पिता, बहन तथा बहनोईको कारावासके दुःख दिये तथा भगवान्‌के नाम पर भीषण विद्वेष, प्रजा-पीड़न आदि महापापोंसे संसारको व्यथित बना दिया था; दूसरी ओर शिशुपाल और दन्तवक्रने अपने आसुर प्रभावसे पृथ्वी माताके हृदयको सन्तप्त करना आरम्भ कर दिया था; तीसरी ओर जरासन्ध, अघासुर, बकासुर, धेनुकासुर, पञ्चजन, केशी, प्रलम्ब; चाणूर, तृणावर्त, नरकासुर, कालयवन, शम्बर आदि कितने ही प्रजा-पीड़क, नरघालक, भीषण अत्याचारी असुर उस समय उत्पन्न हो गये थे; और चौथी ओर आसुरी शक्तिसे उत्पन्न दुर्योधन, दुःशासन आदिके गुरुभारसे पृथ्वी अत्यन्त ही पीड़ित हो रही थी। जहाँ पर रजस्वला, कुलवधू सभाके बीचमें विवस्त्राकी जाय; भीष्म जैसे समर्थ महात्मा वीर भी बैठ-बैठे देखते ही रह जायें; झूठे खेलमें परास्तकर भाईकी सम्पत्ति हर ली जाय; और उन्हें वन-वासमें भी क्लेश दिये जायें; जहाँपर सप्त रथी मिलकर निरस्त्र बालककी हत्याकर क्षत्रिय-धर्मकी तिलाञ्जलि दें। असहायावस्थामें भी मनुष्योंकी हत्याकी जाय, गुरु-शिष्यका और शिष्य-गुरुका प्राणान्त करें तथा गर्भमें स्थित शिशुपर अस्त्र-प्रयोग किया जाय; वहाँपर कितना पाप बढ़ गया था। थोड़े ही विचार करनेपर उसे समझा जा सकता है। इन्हीं पापों और पापियोंका नाश करके संसारमें पुण्यमयी शान्ति-सुधा बहानेके लिए ही भगवान् श्रीकृष्णका पूर्णावतार हुआ था।

वसुदेव-देवकीने पूर्वजन्ममें भगवान्‌को पुत्र रूपमें पानेके लिए घोर तपस्या की थी। इसी कारणसे उनकेद्वारा भगवान् संसारमें अवतीर्ण हुए। कृष्णरूपमें प्रकट होकर श्रीभगवान्‌ने वसुदेव तथा देवकीसे कहा—'पूर्व जन्ममें जो मुझे प्राप्त करनेके लिए आप दोनों ने तपस्या की थी, उसका स्मरण करानेके लिए ही मैंने चतुर्भुज रूपमें दर्शन दिया। आप दोनों पुत्रभावसे मेरा चिन्तन और मुझसे स्नेहकर उत्तम गतिको प्राप्त करेंगे।

श्रीकृष्णके पूर्णावतार होनेसे उनके जीवनमें कर्म, ज्ञान और भक्ति सभीके उच्च तथा अलौकिक आदर्श प्रकट हुए थे। अंशावतारमें अंशकलाका विकास होनेसे उसके सभी काम मुख्यतया किसी एक भावको लेकर होते हैं। अतः अपने-अपने कार्यक्षेत्रके अनुसार ही वे कलाएँ धारण करते हैं। भगवान् श्रीरामजीने मर्य्यादा-भावको मुख्य रखकर सब काम किए थे। जिनके फलस्वरूप सीता अम्बाके निर्दोषा होनेपर भी केवल वंश-मर्य्यादाकी रक्षार्थ ही उन्होंने श्रीमैथिलीजीको वनवास दिया था, किन्तु पूर्णावतार भावातीत होनेके कारण किसी एक भावको लेकर काम नहीं करते। वे केवल जगत्-कल्याण और समष्टिरूपसे धर्म-रक्षाका विचार रखकर ही कार्य-क्षेत्रमें उतरते हैं। इसीलिए युधिष्ठिरसे मिथ्या कहलाकर द्रोणाचार्यका प्राणान्त करवा देनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णको पाप नहीं लगा। और भी ऐसे-ऐसे अनेक कार्य करते रहे, जो लौकिक दृष्टिसे अच्छे न होनेपर भी जगत्-कल्याण तथा विश्वमें धर्म-रक्षार्थ सम्पूर्णतः निर्दोष थे। यही पूर्णावतारके जीवनमें कर्मका रहस्य है।

भगवान् कृष्ण संसारके सामने उस समय आते हैं, जब वह अपने कुलकी आन्तरिक फूटको मिटाकर कंसका वध कर देते हैं; वे नीतिके पुतले, शीलकी प्रतिमा, सदाचारके अवतार, वेद-विद्याके सागर, आदर्श-साम्राज्य-निर्माता और शूरशिरोमणि थे, ये उनके प्रधान गुण थे। श्रीकृष्णके चरित्रमें निजी तथा सार्वजनिक-जीवनके आदर्श उत्कर्षोंका एक अद्भुत समन्वय पाया जाता है, देशकी चिन्तामें कुलके हितका सर्वोच्च साधन वे वैयक्तिक पवित्रताको समझते हैं।

श्रीकृष्णका जीवन किस नैतिक परिस्थितिमें बीता, इसका ज्ञान महाभारतीय वृत्तान्तके नैतिक अनुशीलनसे प्राप्त हो सकता है, वह एक कष्टसाध्य कार्य है; गीताका उपदेश श्रीकृष्णके जीवनका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है; सच तो यह है कि, वह अंग महत्तामें अपने अंगीसे भी आगे बढ़ गया है। संसारके इतिहासमें श्रीकृष्णके जीवनका उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना उनकी गीताका।

भीष्मके शब्दोंमें सब योगोंका एक योगराज धर्म है। कृष्ण उसीके ईश्वर हैं; उसीके पारंगत पंडित और उसीकी मूर्तप्रतिमा हैं, इसीसे उन्हें योगेश्वर कहा गया। सचमुच एक साम्राज्यकी स्थापनासे बड़ा और कौन-सा योग हो सकता था। उसी योगका फल 'श्री, विजय, विभूति, और ध्रुव-नीति' है, यथा—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

अर्थात्—जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं; जहाँ धनुर्धर अर्जुन है; वहाँ लक्ष्मी है, ध्रुव-नीति है। यह है संक्षेपमें श्रीकृष्णका सर्वजनीन जीवन, जिसे महाभारतकारने श्रीकृष्णका योग कहा है।

श्रीबलदेव-जन्मोत्सव

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी एम० ए०, व्याकरणाचार्य

☆

जिस प्रकार श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी प्रतिवर्ष भाद्रपद मास कृष्ण-पक्षमें निश्चित समय पर समस्त भारत वर्षमें मनायी जाती है, उसी प्रकार श्रीवलदेव-जन्मोत्सव भी भाद्रपद-मासमें मनाया जाता है। परन्तु इस उत्सवको किस दिन मनाया जाय ? उसके लिए शास्त्रोंमें वैमत्य-सा प्रतीत होता है। यदि एक शास्त्रमें भाद्र शुक्ल षष्ठीका विधान प्राप्त होता है तो द्वितीयमें भाद्रपद-कृष्ण अष्टमीका। साथ ही किसी सम्प्रदायमें यह भाद्रपद पूर्णिमाके दिवस भी मनाया जाता है, अतः एक शास्त्रीय पद्धतिका निर्धारण करना क्लिष्ट-सा प्रतीत होता है।

(१) गर्गसंहितामें वलदेव जन्मोत्सवका विधान षष्ठी बुधवार तुलालग्न, दिनार्द्ध एवं स्वातिनक्षत्रमें लिखा है, जन्म समयमें ५ ग्रह उच्च स्थानमें पड़े हुए थे। यथा—

अथ व्रजे पंचदिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पञ्चभिरावृते च लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे॥

(गर्ग सं० वल० खण्ड पृ० २१०)

इसी दिन मध्याह्न १२ वजे यह उत्सव व्रजके प्रत्येक कोनेमें वड़ी धूमधामके साथ मनाया जाता है।

(२) द्वितीय पक्ष पद्मपुराणके आधारपर यह प्रमाणित करता है कि वलदेवजीका जन्मोत्सव भाद्रपद-कृष्ण-पक्ष अष्टमी तिथिको ही मनाना चाहिए; क्योंकि पद्मपुराणमें स्पष्ट लिखा है कि इसी दिवस वलदेवजीका जन्म हुआ—

कृष्णाष्टम्यां तु रोहिण्यां प्रोष्ठपद्यां शुभोदये।
रोहिणी जनयामास पुत्रं संकर्षणं प्रभुम्॥

(पद्मपुराण पृ० ८७०)

इस पुराणके अनुसार दोनों भाई श्रीकृष्ण और वलरामका जन्म एक ही तिथिको हुआ। हाँ वह एक वर्षका अन्तर अवश्य मानता है, पर स्पष्ट उल्लेख नहीं।

ततस्तु दशमे मासि कृष्णे नभसि पार्वति।
अष्टम्यामर्द्धरात्रौ च तस्यां जातो जनार्दनः॥

समीक्षा : पर इस सिद्धान्तके अनुसार न तो कहीं यह उत्सव मनाया जाता है और न कहीं अन्यत्र ही ऐसा वाक्य प्राप्त होता है।

(३) तृती पक्ष गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीजीवगोस्वामीजीका नाम प्रख्यात है। आपने श्रीमद्भागवतपर अपनी विद्वत्तापूर्ण एक टीका भी लिखी है जिसका नाम 'क्रम सन्दर्भ' है। इस टीकामें आपने बलभद्रजीको भगवान् कृष्णसे ४ मास ज्येष्ठ सिद्ध करनेका प्रयास किया है। आपके तर्क निम्नलिखित हैं :

(क) यदि बलभद्र एक वर्ष बड़े होते तो गर्गाचार्यद्वारा इनका नामकरण-संस्कार श्रीकृष्णके साथ क्यों होता ?

(ख) यदि बलभद्र बड़े ही थे तो वसुदेवने श्रीकृष्णके समवयस्करूपमें उनका क्यों वर्णन किया ? जैसा कि हरिवंश-पुराणमें स्पष्ट है।

वर्द्धमानावुभावेतौ समान - वयसौ यथा।
शोभेतां गोव्रजे तस्मिन् नन्दगोप तथा कुरु॥ (ह० पु०)

(ग) यदि कृष्ण और बलराम समकालीन न होते तो उनके साथ-साथ घुटुवन चलन, रिङ्गण आदिका भी वर्णन न होता; पर भागवतमें वैसा वर्णन प्राप्त होता है।

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु॥
(श्रीमद्भा० १०।८।२२)

(घ) यदि अवस्था (जैसे कुमारादि) गत वर्णन है, तब भी दोनोंने कुमारावस्था एक साथ ही छोड़ी ऐसा भागवतमें स्पष्ट निर्देश है—

एवंविहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे। (भाग० १०।१४।६१)

(ङ) गोपालचम्पूमें श्रीजीवगोस्वामीजीने श्रावण माससे पूर्व श्रवण नक्षत्रमें बलदेवजीका जन्मदिवस वर्णित किया है।

समीक्षा : श्रवण नक्षत्रका उल्लेख न तो गर्ग-संहिताके आधार पर है, न पद्म-पुराणके। पता नहीं, यह नक्षत्र किस ग्रन्थके आधार पर लिखा गया है।

पर सबसे आश्चर्यकी बात यह है कि यदि गोस्वामीजीका मत माना जाय तब वैशाख मास बलदेव-जन्ममास माना जाना चाहिए; पर लोकमें कहीं भी ऐसा नहीं सुना गया। साथ ही गोस्वामीजीके चम्पू-ग्रन्थसे विरोध भी आकर पड़ता है। द्वितीय विरोध यह है कि यह मत गौड़ीय सम्प्रदायमें भी मान्य नहीं, ऐसा क्यों ? यह सम्प्रदाय भाद्रपद पूर्णिमाको इस उत्सवका विधान करता आ रहा है।

इस शास्त्रीय विवेचनके आधार पर निर्णय करना कठिन है कि वस्तुतः जन्म-दिवस कब माना जाय ? प्रमाण-सामंजस्यके अनिर्णय तक व्रजमें प्रसिद्ध 'बलदेव छट्ट' 'हलधर षष्ठी'को जो भाद्रपद मास शुक्ल पक्षमें आती है, जन्म-दिवस माना जाय और यही गर्गसंहिताके द्वारा प्रमाणित है। ●

'चतुर्भुजदास'-रचित ब्रजभाषात्मक गीति नाट्य-पदोंपर आधारित

गो-दोहन

[अष्टछाप-नाटिका]

रूपान्तरकार

श्रीगोकुलानन्द तैलंग, बी० ए०, साहित्यरत्न

☆

[अष्टछाप-काव्य मुक्तक पदोंमें बँधा होनेपर भी, प्रबन्ध-शैलीपर, बहुत अंशोंमें श्रीकृष्ण-सम्बन्धी एक लीला-काव्य है, अपने आपमें स्वतन्त्र, पद और गीतोंके बाह्य आवरणमें एक-एक भाव या हृदयकी रस-व्यंजना इस प्रकारसे संयोजित की गयी है कि उनके क्रमिक कथा-तत्त्वोंको बैठाकर उससे वह लीला-कथा, जो अन्तःसलिलाके रूपमें उस समग्र काव्यमें प्रवहमान है, मूर्त रूप पा सकती है। इस पद-काव्यमें भी कुछ पद ऐसे हैं, जिनमें नाट्य-तत्त्व भी अन्तर्निहित है। विशेषतः उनके संवादात्मक अंशोंको लेकर, उनके आधारपर, उस मुक्तक काव्यको नाट्य-गीति वा एकांकी नाटिकामें बाँधा जा सकता है। तब यों कहना चाहिए कि वह गेय काव्य दृश्यकाव्यमें निरूपित हो जाता है। गेय पद या गीतियाँ अभिनेय अथवा रंगमंचोपयोगी हो जाती हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी एक-एक रस-लीला, एक-एक रास-लीला, रंगमंचीय दृश्य-सौन्दर्यमें परिवेशित होकर आजकी एक अभिनव लोकानुरंजनकारिणी नाट्य-विधामें बदली जा सकती है।

प्रस्तुत अष्टछाप-नाटिका ब्रजभाषात्मक पदों अथवा गीति-नाट्य-काव्योंपर आधारित एक ऐसा ही प्रयोग है। सम्प्रति आठों कवियों—सूरदास, नंददास, परमानंददास आदिके विशिष्ट चुने लीला-काव्यपर, लेखक द्वारा आठ नाटिकाएँ 'रस-धारा' नामसे तैयार की गयी हैं। भक्त कवि चतुर्भुजदासके पदोंपर लिखा गया 'गो-दोहन' यहाँ पाठकोंके समक्ष है। —सम्पादक]

पात्र :

पुरुष

१. नन्दनन्दन श्रीकृष्ण
२. ग्वाल-सखा

स्त्री

१. वृषभानु-कुमारी राधा
२. कीर्ति रानी (राधाकी माँ)
३. ललिता (राधाकी सहेली)
४. चन्द्रावलि (राधाकी अन्तरङ्ग सखी)
५. गोपाङ्गनाएँ

स्थान :

१. बरसानामें वृषभानुजाके भवनका अन्तःप्राङ्गण
२. व्रज-गोकुलमें नन्दरायजीकी खिरक
३. यमुना-पुलिनपर एक सघन निकुंजकी वीथिका
४. नन्द-भवनका वाह्य प्राङ्गण (सिंहपौर)

समय :

प्रातःकाल, सूर्योदयसे पूर्व
सायंकाल, गोधूलि-वेला

●

दृश्य : प्रथम

[प्रातःकाल, सूर्योदयसे पूर्व बरसानामें वृषभानुजाके भवनका अन्तः-प्राङ्गण। कीर्तिरानी दधि-मन्थनका आयोजन करती हुई। कुछ परिचारिका गोप-बालाओंके बीच राधा अनमनी-सी कीर्ति माँके समीप खड़ी हुई, किन्हीं अन्तर्द्वन्द्वोंमें उलझी-उलझी-सी, उनके उपक्रममें हाथ बँटाती हुई।]

राधा[1]—[बाल-सुलभ चंचलता और भोलेपनके साथ] माँ, मुझे खिरक जाने दे, गो-दोहनकी वेला टल रही है। तू तो ध्यान ही नहीं देती मेरी बातपर। दूसरी ही बातों-बातोंमें देर हुई जा रही है।

कीर्ति—[मीठी झिड़कके साथ] तो तू भी इतनी उतावली क्यों हुई जा रही है ? दोहनी भी तो खाली करने दे।

---

१. देहु री माई खरिक जान गो-दोहनकी टरत बार।
पराई अरप तुम जानति नाहिने बातहि बात होति अति अबार॥

राधा—[1][उदास-सी होकर] मुझे कुछ भी नहीं सुहाता माँ, जबतक मैं गाय न दुहा लाऊँ। इसीलिए तो पहिले हीसे बछड़ोंको द्वारपर लाकर मैंने खड़े कर दिये हैं।

कीर्ति—पर, यह तो बता पगली, कि खिरकमें ग्वाले आये भी होंगे ?

राधा—यह भी तो एक उलझन है; अभी ललिता कह रही थी कि 'कन्हैया न जाने कहाँ चले गये हैं ? खिरकमें मैंने उन्हें नहीं पाया।'

कीर्ति—[सहज भाव से] अरी, कन्हैया ही से क्या ? किसी भी अहीरसे जाकर दुहा ले।

राधा—[सम्हलकर] नहीं माँ, वे दुहनेवालोंमें बड़े चतुरशिरोमणि हैं। दूसरे ग्वालोंसे दुहाती हूँ, तो कितना गोरस छीजता है, तू नहीं जानती।

कीर्ति—तो जा, ले दोहनी, ढूँढ उस कन्हैयाको और गाय दुहाकर वेग ही लौट।

[राधाके हाथमें दोहनी देती है और अपने काममें लग जाती है, राधा किसी अज्ञात मोहिनीसे मुग्ध-सी अपनी वाक्चातुरीसे उसी मोहिनीको मानो माँपर भी डालती हुई, दोहनी लेकर प्रासाद-सीमासे सुदूर अंचलकी ओर प्रस्थान करती है, पल-पल उन्मन चित्तमें, नैनोंसे ओझल सब-सुख-उदार गिरिवरधर श्यामसुन्दरको वियोग-पीड़ाको सँजोये हुए।]

[पटाक्षेप]

दृश्य : द्वितीय

[व्रज-गोकुलमें नन्दरायजीकी खिरक। सुदूर छोरपर प्रातःकालीन प्रकृति-सुषमासे अनुप्राणित यमुना-तटवर्ती कदम्ब-कुंजोंके बीच रसिक कुँवर श्यामसुन्दरके अनुराग-रागमें पगी, नवयौवनवती वृषभानुकुमारी राधा हाथमें दोहनी लिएँ दृश्यमान, गोदोहनके मिषसे प्रमुदित, दर्शनके लिए उल्लसित, नन्दनन्दनकी अनुगामिनी, मनसिज-मनको भी मोहित करनेवाली, मानो रूप-सुधा-निधिसे मथकर काढ़ी हुई अंग-अंग-छबि-विलसित, परमसुन्दरी—मद-रस-अलसित दशामें खिरककी डगरपर आती हुई। द्वारपर श्रीकृष्ण गोदोहन करते हुए। आसपास ग्वाल-सखाओंका कोलाहल।]

---

१. कछु न जिय सुहाइ जौलौं न दुहाऊँ गाइ, याही तें अगमनि आइ रहौं बछरान द्वार।
गोरस छीजै हमारे कान्हजू कहाँ सिधारे चतुरसिरोमनि दोहनहार॥
गही वेगि दोहनी पठि पेली मोहिनी 'चत्रभुज' प्रभु बातैं कहि सुढार।
मनु न रहत चैन छिनु बिनु देखे नैन गिरिवरधर सबसुख उदार॥

२. कर लै निकसी धन दोहनी।
भोरहि स्याम-वदन देखनकों अलस अंग छबि सोहनी॥

राधा[1]—[मृदु-मुस्कान-भरी चितवन डालती हुई, उनकी मद-भरी दृष्टिसे मुग्ध] कन्हैया, हमारी गाय दुह दो !

श्रीकृष्ण—[उसके चपल नैनोंसे चकित] कुँवरि ! आज इतनी उतावली क्यों हो रही हो ?

राधा—माँने मुझे गाय दुहाकर जल्दी लौटनेको कहा है। मोहन, तुम्हें कुंज-कुंज खोजनेमें वैसे ही देर हो गयी, खिरकमें तुम्हारे बिना मैं किससे गाय दुहाती ?

श्रीकृष्ण—[नटखट चेष्टाओंमें] क्यों, इतने ग्वाल यहाँ थे न ?

राधा—नहीं मोहन, माँ तुम्हें सरल, सात्त्विक-स्वभाव समझकर, तुम्हारे पास ही मुझे दोहनी लेकर गाय दुहाने भेजती है, सभी तुम्हें परम उपकारी कहते हैं, संकर्षण बलदाऊके छोटे भैया, कन्हैया !

श्रीकृष्ण—[सीधेपनसे] तो मैं आज तुमपर क्या उपकार करूँ राधे ?

राधा—[कुछ लजायी, सहमी-सी] क्या तुम्हारा यही उपकार कम है श्याम, कि तुम्हारे दुहनेसे इतना दूध मिलता है, जिससे बहुत-बहुत दधि, घृत, नवनीत निकलता है, हमारे घर भरको भरपूर, पर्याप्त !

श्रीकृष्ण—[मधुर गम्भीरतासे] अच्छा, यह बात है ? हमारे हाथोंमें यह प्रभाव ! इतने गोरसके दाता हम !

राधा[2]—[लजीली आँखोंसे] हाँ, हाँ, कन्हैया, देर न करो। लो, कमल-कर में मेरी दोहनी, लो, मैं तुमपर बलि-बलि जाती हूँ, गिरि-गोवर्द्धनके राजा, मेरे कान्ह, इतनी कृपा करो।

[दोहनी श्रीकृष्णके हाथोंमें देने लगती है, वे राधाके समीप आकर खड़े हो जाते हैं।]

मनु सोमा नेधि मथिकैं काढ़ी मनसिज-मनकों मोंहनी।
खरिककें डगर चली हित पागी रसिककुँवरके गोंहनी ॥
गाइ दुहावनके मिस नव तिय नँदनंदन मुख जोंहनी।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरनलालकी चितवनि मृदु मुसिकोंहनी ॥

१. कान्ह दुहि दीजै हमारी गैया।
तुमहिं जानि सतभाइ लै नित मोहिं पठावति मैया ॥
सब कोउ कहत परम उपकारी संकरपनके लोहरे भैया।

२. गहहु कमल कर दोहनी नंदनंदन लेहुँ बलैया ॥
तुम्हरे दुहत हमारे पूजत बहुतै दधि बहुतै घृत घैया।
'चत्रभुज' प्रभु नित करहु कृपा इहि गिरि गोबर्धन रैया ॥

श्रीकृष्ण[1]—अच्छा, राधे, लाओ, तुम्हारी गाय अच्छी प्रकार दुह दूँ।

[आतुर होकर कनक-दोहनी राधाके हाथोंसे ले लेते हैं, राधा मन्त्र-मुग्ध-सी अपलक उनकी ओर देखती रह जाती है।]

राधा—मोहन, तुम कितने प्रिय हो !

[इसी समय राधाकी गाय बछड़ेके समीप आ जाती है, वह थनोंसे मुख लगा लेता है।]

श्रीकृष्ण—[रस भरी चितवनसे देखते हुए] अरी, राधे, वह पाटकी डोरी तो जल्दी दे दे। देख न, बातों ही बातोंमें बछड़ा तेरी गाय चोखे जा रहा है।

[राधा श्रीकृष्णसे कुछ दूर पड़ी डोरी लाकर उन्हें देती है। और वे बछड़ेको गायसे अलग कर राधाको पकड़ा देते हैं। स्वयं गायके नीचे दोहने बैठ जाते हैं—एक हाथमें दोहनी घोटुओंसे टिकाकर और दूसरे हाथसे गायकी पिछली टाँगोंको रस्सीसे बाँधते हुए।]

[इधर गायके थनोंसे दूधकी धारा भी दोहनीमें छोड़ते जाते हैं, और चंचल दृष्टिसे राधाको निरखते हुए, उससे रसीली बातें भी कर रहे हैं। इस प्रकार सहज रूपमें ही रति-सम्बन्धको नेहकी डोरीसे बाँधते हुए, दोहनीमें गोरस और हृदयमें प्रीति-रसका संचय करते हुए।]

[पटाक्षेप]

दृश्य : तृतीय

[प्रातःकाल—यमुना-पुलिनपर सघन-निकुंजकी वीथिका—सुदूर छोरपर, नन्दरायजीकी खिरक दृश्यमान, एक ओरसे राधा हाथमें दोहनी लिए आती हुई, भावभरी, रस-डूबी-सी और दूसरी ओरसे ललिता सिरपर गगरी रखे यमुना-तीरकी ओर जल भरने जाती हुई; परस्पर विस्मय-पूर्ण एवं रहस्यभरी दृष्टि डालना और ठिठककर खड़ी हो जाना।]

ललिता—आज इतने सवेरे कहाँ कुँवरी ? गाय दुहाने जा रही है खिरकको ?

राधा—[मंद मुस्कानके साथ] जानती तो है, अनजानी-सी क्यों पूछती है ?

---

१. मोहन पूरे हौ सतभाइ।
कहत ल्याउ नीकें दुहि देहौं ग्वालि तुम्हारी गाय॥
आतुर ह्वै दोहनी कनककी कर तैं लीनी आइ।
दै धौं बेगि पाटकी नोई दछरा चोखें जाइ॥
हँसि-हँसि दुहत ऽरु करत रसीली बातें कहत बनाइ।
'चत्रभुज' प्रभु सहजहि रति जोरी गिरि गोबर्धनराइ॥

ललिता—हाँ, दोहनी हाथमें देखकर तो मेरा यही अनुमान था। किन्तु तन-मनका रंग-ढंग कुछ दूसरा ही दिखा, इसीलिए सहज पूछ लिया। आखिर, यह भूली-सी, ठगी-सी गति कैसे बन रही है ?

राधा—[भाव-मुग्ध मुद्रामें] तो यह भी बताना पड़ेगा सखी !

ललिता—[मार्मिक दृष्टिसे] क्यों नहीं ? नहीं बताना चाहती ? जा, रहने दे।

[एक ओर चलनेको उद्यत होती है।]

राधा—[रोकती हुई] ललिते, तुझसे क्या छिपा है, क्या छिपा रहेगा।

ललिता—हाँ, इसीलिए तो पूछती हूँ, तुझीसे कहलवाना है। भोर होते न होते ये खिरकके चक्कर कैसे काट रही है ? अभी तो ग्वाले भी न आये होंगे ?

राधा—[1]मेरा ग्वारिया तो मेरे भीतर बसा है, सखि ! जिस दिनसे उसने मेरी गाय दुह दी है, उस दिनसे अपने आप ही मानो मेरे चित्तपर कोई ठगौरी डाल दी है।

ललिता—कौन-सा ग्वारिया ? कब और कैसी मोहिनी डाल दी ? खोलकर तो कह।

राधा—[रस-भीगी-सी] वही, श्यामसुन्दर, कन्हैया, सखि, तू अनजानी थोड़े ही है ? उस दिन गाय दुहकर उन्होंने सहज ही हाथमें दोहनी दी और लुभाये-से, गोरसके बहाने, मुझसे रस-दानके लिये विनय की····मोहिनी मुस्कान-भरी चितवनके साथ, कुछ मीठे बोल बोलते रह गये। उस समय उन्हें देखकर मैं क्या बताऊँ, कैसी प्रेम-रससे भीग गयी !

ललिता—[मंद हँसीके साथ] तभी इतने सबेरे नित्य-प्रति खिरककी ओर उतावली-सी चली जाती है उनसे मिलने, लोक-लाज तो मानो पी गयी हो।

राधा—[विवश-सी] सखि, मैं क्या करूँ ? मुझे इन सब बातोंका भान ही नहीं। उस मनमोहन गिरिधरकी रूप-छटा ने····उसकी छल-बल भरी वाणी और चेष्टाओंने मेरी सारी सुध-बुध हरण कर ली है। बोल, इसपर मेरा क्या वश है ?

ललिता—राधे, तू ठीक कहती है। सभी व्रजांगनाओंकी ऐसी गति बनी हुई है। फिर तेरे साथ तो बात ही कुछ अलग बन पड़ी है।

राधा[2]—[भावावेशमें अधखुली-सी दृष्टि डालकर] हाँ, सखि, एक ही चितवनमें वे चित्त

---

१. जा दिन तैं गैया दुहि दीनी।
ता दिन तैं आपकौं आपहि मानहुँ चितै ठगौरी लीनी॥
सहज स्याम कर धरी दोहनी दूध लोभ मिस विनती कीनी।
मृदु मुसिक्याइ चितै कछु बोले ग्वालिनि निरखि प्रेमरस-भीनी॥
नितप्रति सकारियै उठि आवति लोकलाज मानौं घृत सौं पीनी।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर मनमोहन दरसन छलबल सुधि-बुधि लीनी॥

२. चितवन में चित चोरयौ री माई !
कर दोहनी लिये नँदनन्दन खरिक जाति जब पाई॥

चुरा लेते हैं। मैं क्या कहूँ, उस दिनकी बात, जब हाथमें दोहनी लिये, नन्दनन्दनसे खिरक जाते हुए, मेरी अचानक भेंट हो गयी। मेरी दृष्टि उनसे उलझ गयी और वे भी गो-दोहन भूलकर मुझे देखते रह गये, दाँतों तले उँगली देकर इकटक मेरे रूपपर दृष्टि गड़ाते हुए।

ललिता—[बीचमें टोककर] अरी, दृष्टि ही तो गड़ायी न ? तेरी रूप-निधि लूट तो नहीं ली ?

राधा—[लजायी, सकुचायी-सी] लूटनेसे भी अधिक हो गया। सखि, उन्होंने लकुट तो एक ओर डाल दी और लग गये मेरे पीछे, मेरी सुन्दरताकी याचना करते हुए मानो श्रीमुखसे मेरे रूपकी सराहना, ललचायी आँखोंसे निहारना, क्या कम है ललिते ?

ललिता—[मार्मिक वाणीमें] पर, पा न सके उस समय और तू लुटा न सकी, इसीलिये सवेरेसे सायंकाल तक उन्हींकी नेह लगनमें बरसाना और व्रजको एक किया करती है····खिरक और नन्द-भवनके चक्कर काटती है, कुञ्ज-निकुञ्जोंमें 'श्याम-श्याम'की रट लगाती फिरती है, क्यों, है न यही बात ?

राधा—[सहमी-सी] ललिते, अकेली मैं ही तो इस नेह-लगनमें पगली नहीं हूँ। वे रसिक-गिरिवरधर भी तो साँझ-सवेरे सामनेकी इस सघन वेलि-कुञ्जमें; [संकेत करती हुई] मेरी बाट जोहा करते हैं।

ललिता—तो जा सखि, मैं तुझे अब एक पल भी नहीं रोकूँगी। उसकी तलावेली और तेरी चटपटी।

[ललिता एक ओर को हँसती हुई चल देती है, राधा भी निकुञ्जकी ओर।]

[पटाक्षेप]

दृश्य : चतुर्थ

[सायंकाल, गोधूलि-वेला--नन्दभवनका बाह्य प्रांगण, सिंहपौर—राधिका एक हाथमें दोहनी और दूसरे हाथमें पाटकी डोरी लिए अधीर, अनमनी-सी इधर-उधर झाँकती हुई, कुछ प्रतीक्षा करती हुई-सी ! सामने आती हुई चद्रावलि, सिरपर दधिकी मटुकिया रखे हुए--दोनोंका प्रत्यक्ष मिलन।]

ठाढ़े रहे दसन अंगुरी दै ज्यों त्यों गाइ दुहाई।
उलटे लकुट बिसारि भए सँग याचत सुंदरताई ॥
बारंबार 'चत्रभुज' प्रभु सखि श्रीमुख कहत बड़ाई।
जोवत पंथ रसिक गिरिवरधर सघन बेलि जहँ छाई ॥

चन्द्रावली[1]—[विस्मित भावसे] अरी राधा, अभीसे तू यहाँ दोहनी लेकर ? अभी तो गाय भी वनसे नहीं लौटी हैं ? ग्वालिनी, गो-दोहनकी वेला भी तो नहीं होने देती ? दौड़ पड़ी गाय दुहानेके वहाने, इतनी जल्दी ?

राधा—[हतप्रभ और निरुत्तर-सी] सखि, मैं दुहाने नहीं आयी हूँ। माँके साथ आयी थी, यहाँ नारायणके दर्शन करने, मन्दिरमें, साथमें दोहनी भी लेती आयी। सोचा, समय होगा तो खिरकमें गाय भी दुहा लाऊँगी। माँ वरसाना लौट गयी, मैं यों ही चलती चली आयी।

चन्द्रावली—[मुस्कुराती हुई] मैं जानती हूँ, कैसा बनावटी उत्तर दे रही है ? मुझे ही झुठाने चली है ? खिरक आनेका तो वहाना है। नन्द-भवनके द्वारपर झाँक-झाँककर क्या देख रही है ? क्या तेरी वात मैं नहीं जानती ?

राधा—[मुग्ध और स्थिर भावसे] क्या जानती है, वता न ?

चन्द्रावली—यही कि, नन्दलालसे मिलनेके ही इतने उपाय करती रहती है—कहीं गोदोहन, तो कहीं यमुना-जल-भरन, तो कहीं देव-दर्शन !

राधा—[सलज्ज नयनों से] सखि, वात तो तेरी वहुत कुछ सही है। पर, मैं क्या करूँ ? गिरिधर नागर कन्हैयाने मेरा मन-माणिक जो चुरा लिया है ! मैं उसी चोरको खोजा करती हूँ।

चन्द्रावली[2]—तभी यहाँ-वहाँ दोहनी लिए झूमती-फिरती है। आयी, अनोखी गाय दुहाने-वाली। अरी, कन्हैयाको वनसे आते हुए तो देर भी नहीं हुई और चली उनसे गाय दुहाने ! उन्हें अपने भवनकी पौरीमें प्रवेश तो करने दे। सारे दिनके श्रान्त शरीरका भी तो थोड़ा विचार कर ?

राधा—[संकुचित-सी] वात तो ठीक है चन्द्रावलि, पर मैं इस मनको क्या करूँ ?

---

१. ग्वालिनि अजहूँ वनमें गाइ।
होन न दति वार दोहनकी चलत सकारयौ धाइ ॥
लै दोहनी खरिक मिस खोरत ऊतरु कहति वनाइ।
नंद द्वार फिरि-फिरि झाँकति इह वात न जानी जाइ ॥
समुझति हौं तू लाल मिलन हित करति है एते उपाइ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरनागर मन मानिक लियौ चुराइ ॥

२. लटकति फिरति दोहनी लै री।
अनोखी गाय दुहावनिहारी कान्है पौरी पैठनि दै री ॥
वन तैं आवत भई न विरियाँ वासर स्रम तनु नैकु चितै री।
तोहि न दोस नए हितकी गति कठिन हिलगकी ऐसी है री ॥
तुव दृग चञ्चल अम्बुजनैनी दरसन हानि न नैकु सहै री।
'चत्रभुजदास' लाल गिरिधर कौ चित चोरयौ मृदु मुसिकै री ॥

चन्द्रावलि—तो मैं तुझे दोष कब देती हूँ, राधे नये-नये प्रेमकी हिलग ही ऐसी होती है। कैसी कठिन गति है इस प्रीति-रीतिकी, अम्बुजनयनी राधे तेरे ये चञ्चल नेत्र प्रिय दर्शनकी थोड़ी भी हानि नहीं सह सकते। उन्होंने तो मृदु मुस्कानके साथ लाल गिरिधरका भी चित्त चुरा लिया है।

राधा[1]—सखि, जो भी कहना हो, कह ले। पर, तथ्य तो यही है कि खिरकमें गाय दुहाते समय सुन्दर स्यामको जबसे देखा है, मुझे कुछ नहीं सुहाता। मैं तो सहज स्वभावसे मार्गमें चली आ रही थी सखि, किन्तु मदनगोपालको देखते ही, इकटक ठगी सी मुस्कुराकर रह गयी। क्या कहूँ, सारी लोक-लाज, सारा गृह-कारज, सारे बन्धु, पिता-माताको मैं भूल गयी। गिरिवरधर कन्हैयाने मेरा तन, मन, सर्वस्व चुरा लिया। मैं लुट गयी, मिट गयी।

इसी समय वेणुनादसे समग्र व्रजमण्डल मुखरित हो उठता है। गोपांगनाओंके दल जहाँ-तहाँसे, वनसे लौटते हुए वनमालीके दर्शन करनेको सिंहपौरपर उमड़ पड़ते हैं। राधा और चन्द्रावलिको द्वारपर खड़ा देखकर, व्रजसुन्दरियोंका एक दल मधुर स्वर-लहरीके साथ गा उठता है।

गोपांगनाएँ--

कहा री सखी तोहि लागि ढौरी।
संध्या समै खरिक बीथिनि मैं इत उत झाँकति डोलति दौरी॥
कबहुँक हँसति कबहुँ कछु बोलति चंचल बुधि नाहिंन इकठौरी।
कबहुँक कर कठताल बजावति कबहुँक राग अलापति गौरी॥
गिरिधरपिय तुव कियौ दुचितौ चित कहि न सकति मीठी अरु कौरी।
'चत्रभुज' प्रभु गो-दोहन रस तजि दैन कही तोहि मात पिछौरी॥

[राधा और चन्द्रावलि भी उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर सिंहपौरके भीतर प्रवेश करती हैं।]

[पटाक्षेप]

---

१. तब तें और न कछू सुहाइ।
सुन्दरस्याम जबहिं तै देखे खरिक दुहावत गाइ।
आवति हुती चली मारग सखि हौं अपुनै सतभाइ॥
मदनगोपाल देखिकै एकटक रही ठगी मुसिकाइ।
बिसरी लोकलाज गृहकारज बन्धु पिता अरु भाइ॥
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिवरधर तनु मनु लियौ चुराई।

श्रीकृष्णविषयक भारतीय चित्रकलाकी समीक्षा—

चित्रकलामें भगवान् श्रीकृष्णकी झाँकी

श्रीदिनेशचन्द्र गुप्त

★

भारतीय इतिहासमें अतीतके पृष्ठ इस बातके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि भारतीय शिल्प भी अन्य कलाओंसे अछूता नहीं रह सका। भारतवर्षके विशालकाय गुम्बदोंपर ईरानी शिल्पकलाका प्रभाव है। लगभग १९वीं शताब्दीके मध्य भारतीय चित्रकलामें ऐसे चित्रोंका अंकन हुआ, जिनपर परम्परागत शैलीसे पृथक् किसी अन्य शैलीकी छाप है। निश्चय ही उक्त शैलीमें ईरानी शैलीकी आभा दृष्टिगोचर होती है। भारतवर्षके कला जगत्में विभिन्न शैलियोंका प्रादुर्भाव इस वैदेशिक शैलीके कारण ही हुआ, जिन शैलियोंमें एक पहाड़ी शैली भी है जिसका भारतीय चित्रकलामें बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय चित्रकलाके इतिहासमें इस शैलीने अपने धार्मिक अंकनके फलस्वरूप श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है।

इन चित्रोंमें सात्त्विकता, भावव्यंजकता, कोमलता, सुकुमारता एवं वातावरणकी श्रेष्ठ अभिव्यक्तिका पूर्ण समावेश किया गया है। भारतीय चित्रकारोंकी 'योगिराजकृष्ण'में अपार भक्ति है। श्रीकृष्णकी अनेकानेक भावमयी लीलाएँ उन्होंने अत्यधिक श्रद्धाके साथ अंकित की है। भारतीय चित्रकारोंमें श्रीकृष्णने मानवीय क्रियाकलापोंको श्रेष्ठताकी चरमसीमापर पहुँचाकर उनके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा-भावनाको व्यक्त किया है। राजपूत शैली और पहाड़ी शैलीके चित्रोंमें एकरूपताके दर्शन होते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्यमय चित्रोंके अवशेष आज भी पंजाबमें उपलब्ध हैं। राजस्थानी शैलीमें अंकित भगवान् श्रीकृष्णकी मुद्राएँ व्रजभाषाके कवियोंकी कविताओंपर आधारित हैं। अतिशयोक्ति न हो तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि पहाड़ी शैलीके चित्रकारोंने देवाकृतियोंके अंकनमें जो सफलता प्राप्त की है, वह श्रीकृष्णके जीवनसे सम्बन्धित चित्रोंके कारण ही। इन चित्रोंमें 'कृष्णनृत्य' नामक चित्र जो नेशनल म्यूजियममें संगृहीत है, अपनी शैलीकी अनोखी कृति है। श्रीकृष्णका नृत्य-मुद्राओंमें पैरोंकी उँगलियोंके बल नाचना, साथमें गोपिकाओं द्वारा 'मृदंग' और 'करताल' द्वारा ताल देना दर्शकको मंत्र-मुग्ध कर देता है। रंगोंकी योजना अपने ढंगकी एक ही है। लगता है कला-

कारोंने वर्षोंकी साधनाको इस माध्यममें पिरो दिया है। इस शैलीके चित्रोंको देखकर यही कहना पड़ता है कि पहाड़ी शैलीके कलाकारोंने श्रीकृष्ण-जीवनके प्रत्येक पक्षके चित्रांकनमें पूर्ण दक्षता प्राप्त की है। एक चित्र ऐसा प्राप्त हुआ है, जिसमें अभिसार भावनाको मार्मिकरूपमें चित्रण किया गया है।

कैप्टन सरदार सुन्दरसिंहके सौजन्यसे प्राप्त राधाकृष्णकी त्रिभंगमुद्रा अपनी शैलीकी अद्वितीय कृति है। दूर पृष्ठभूमिमें ग्रामीण अंचलोंका दृश्य तथा कदम्बपेड़के नीचे राधाकृष्णकी मोहक भंगिमा बड़ी ही सजीव बन पड़ी है। वस्त्र-विन्यास और आँखोंकी रेखाएँ—भारतीय चित्रकलाके सफल अंकनका प्रतिनिधित्व करती हैं। इसी प्रकार १९ वीं शदीका चित्र, जिसमें कृष्ण-राधाको एक 'दीर्घा' पर अवस्थित चित्रित किया गया है, बड़ा मनमोहक है। राधाके हाथोंकी मुद्राएँ श्रीकृष्णके मनोभावनाओंके सफल अंकनमें सहायक हैं। साथ ही राधाका लजाकर आँचलकी ओटमें अपनेको छिपा लेना मूक अभिसार भावनाओंकी अभिव्यक्ति है।

इन भारतीय चित्रोंको देखकर यही कहा जा सकता है कि हमारे देशकी कला अपने धार्मिक प्रवृत्तियोंके कारण ही अपनी साधनाके चरम सीमापर पहुँची है।

कृष्ण जन्म

मथुरा में जन्म लियौ गोकुल पधारे कान्ह,
छम छम बूंदें परैं मेघन रसाल की।
ताही समैं से सजी सहसफन छायाकरी,
लियैं जात वसुदेव मूरति गोपाल को॥
जमुना चर छवाय नन्द के महल जाय,
लाय दीनी देवकी कौं छोटी सी बालकी।
सूर्य तेज अंश भयौ कंस निरवंश भयो,
नन्द कै आनन्द भयो जै कन्हैयालाल की॥

[संकलित]

श्री राधाविषयक
आधुनिक आलोचनाकी समीक्षा

श्रीकृष्णकी राधा : एक चिन्तन

श्री वैदेहीशरण शर्मा

★

आधुनिक युगमें राधा एवं तत्सम्बन्धी साहित्य, भाव तथा विचारोंको लेकर अनेकानेक तर्क उपस्थित किये जाते हैं। किसी-किसीके मतसे तो राधा एवं तत्सम्बन्धी मत केवल अनैतिकताको ही प्रोत्साहन देनेके लिए है। इस प्रकार कोई राधाको कृष्णकी परकीया नायिका तो कोई भ्रष्ट करनेवाली आदि अनेक प्रकारके मत व्यक्त करते हैं। यद्यपि इस क्षेत्रमें बहुतसी स्वतन्त्र पुस्तकें, लेख एवं खोजपूर्ण सामग्री मिलती हैं, फिर भी किसीको इस मतका पोषक तो किसीको इसका विध्वंसक या इसी प्रकारके परस्पर विरोधी भावोंको प्रकट कर एक दूसरेके खण्डन-मण्डनादि कर शोधपूर्ण सामग्रीको भी कलुषित बनाया जाता है।

जहाँतक 'राधा' शब्दका सम्बन्ध है, वह प्रायः वेदोंसे प्रारम्भ होकर उपनिषद्, स्मृति एवं पौराणिक युगतक किसी-न-किसी रूपमें सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। बलदेव उपाध्यायने 'राधा' शब्दको ले स्वतन्त्र एक खोजपूर्ण ग्रन्थ ही लिख डाला। उसमें उन्होंने अनेक उद्धरणोंको देते हुए दिखाया है कि वेदोंसे प्रारम्भ होकर राधा किस प्रकार आधुनिक साहित्य तक अविच्छिन्न रूपमें दिखाई देती है। इसी आशयसे डा० शशीभूषण दास गुप्तने राधाक्रम-विकास (बंगाली), डा० एन० एन० लाने 'प्राचीन ओ मध्य युगे भारतीय-साहित्ये राधार उल्लेख' नामक रचनामें बड़े विशद रूपमें प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे स्वतन्त्र निबन्ध प्राप्त होते हैं और समय-समयपर प्रकाशित होते रहते हैं जिनमें अन्वेषणकी दृष्टिसे अनेक दुरूह स्थलोंपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीटयूटकी १९५५ की जर्नल पत्रिका के अंकमें एक शोधपूर्ण रचना 'दी डेव्हलप्मेण्ट आफ् राधा कल्ट' शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी। इसके लेखक महाशयने विभिन्न भागोंसे प्राप्त कृष्णचरित्रों एवं राधासम्बन्धी आख्यानोंका क्रम-बद्ध वर्णन किया था। काशीसे प्रकाशित नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके २०२२ के दूसरे अंकमें 'ब्रह्मपुराणकी प्रतीकित राधा' शीर्षकसे शोधपूर्ण रचना प्रकाशित की गयी थी। इसके अतिरिक्त जे० एन० फर्कुहर, जाकोबी, स्मिथ एवं चीनी यात्रियोंके यात्रा विवरणसे तत्कालीन कृष्ण-राधाकी पूजा, परम्परा-मूर्तियोंका वर्णन ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त अन्वेषणीय

हैं। इसके अतिरिक्त भक्ति पंथकी स्वतंत्र भावपरक रचनाओंमें भी राधा साहित्यकी एक आवश्यक पूर्तिके अंग प्राप्त होते हैं। श्री वल्लभाचार्य, हितहरिवंश गोस्वामी, सूर, रूप गोस्वामी आदिके अतिरिक्त अनेक कृष्ण-भक्ति साहित्यके ऐसे रचनाकार हो गये हैं, जिनकी रचनाएँ राधा कृष्णके प्रेम, रस एवं ऐतिहासिक दृष्टिसे भी प्रसंशनीय हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिसे 'राधा' की खोज करनेपर पता चलता है कि वेदों, पुराणों, उपनिषदों एवं काव्योंमें राधाकी झलक स्पष्ट रूपसे प्राप्त होती है। ऋग्वेदमें कृष्णकी कथाओंकी भी यत्र-तत्र सूक्तोंमें झलक मिलती है। कहीं वनकी झाँकी तो कहीं पुरुषार्थमय असुरोंका संहार। इसी बीच राधाजीका भी स्तुतं राधानां पत्ते, स्तोतं राधानां पत्ते (५-५१-१०) उल्लेख है। उपनिषदोंमें तो राधिकोपनिषद एक स्वतंत्र ही कई मन्त्रोंका रहस्यमय उपनिषद् है। पुराणोंमें भागवत तथा विष्णुपुराणको छोड़कर प्रायः सभी पुराणोंमें राधाका नाम वर्णित है। भले ही उसका स्वरूप प्राकृतमय ही क्यों न हो। कुछ वंग साहित्यके अन्वेषकोंने पुराणोंमें वर्णित आख्यानोंको प्रकृतिसे संबंधित भी माना है। उनके विचारसे पुराणोंकी अधिकांश कथाएँ गोपनीय एवं रूपकके ढंगपर व्यक्त की गयी हैं। इसी प्रकार ईसवी सन् की प्रथम शताब्दीकी रचनाओंसे प्रारम्भ होकर राधा अबतकके साहित्यमें सर्वत्र किसी-न-किसी रूपमें मिलती है।

दार्शनिक रहस्य

वस्तुतः सांख्यशास्त्रादिमें वर्णित 'पुरुष' परब्रह्म परमात्मा ही सारे प्राणियोंके आत्मा एवं उसकी आह्लादिनी शक्ति 'प्रकृति' ही अनेक रूपोंमें विभक्त होकर उसके कार्योंको साधनेवाली लक्ष्मी, राधा, सीताके रूपमें हमें मिलती हैं। वह परमात्मा भी मनुष्यकी-सी लीला करते हुए मानवी व्यवहारोंका प्रवर्तक बनकर आसुरी शक्तिपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे अनेकानेक योनियोंमें भ्रमण कर संसारका कल्याण ही अपना लक्ष्य बनाता है। परम पुरुषकी अनन्त शक्तियाँ हैं और प्रत्येक अवतारमें वह अपनी शक्तियोंके साथ ही अवतीर्ण होता है। इस पुरुषको सत्-चित्-आनन्दमय कहा जाता है इसलिए इसका एक नाम सच्चिदानन्द भी है। श्रीकृष्ण उसी परमपुरुषके अवतार माने जाते हैं। उसी परब्रह्मकी शक्तियोंमें राधा भी है। कोई-कोई रुक्मिणी, सत्यभामा आदिका नामोल्लेख भी करते हैं।

भारतीय तन्त्र ग्रन्थोंका अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। इसमें सर्वांग भावसे प्रत्येक प्राकृत वस्तुकी व्यवस्था कर देवताओंकी मन्त्रों द्वारा आराधना कर अपनी इच्छित वस्तुकी प्राप्ति की जाती है। तान्त्रिक सम्प्रदायने भी 'राधा'को अपनी साधनामें स्थान देकर यह सिद्ध किया है कि कृष्णकी अनन्त शक्ति राधा हैं। महानिर्वाण तन्त्र, मेरु तन्त्र, तन्त्रसार आदिमें तो इनकी आराधना एवं सिद्ध करनेकी तान्त्रिक विधि प्राप्त होती ही है पुराणोंमें भी 'राधा'की तान्त्रिक परिचर्या पर्याप्त रूपसे उपलब्ध होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराणकी राधाका बड़ा सुन्दर मूल प्रकृतिरीश्वरीके रूपमें दिखाया गया है जो तान्त्रिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

राशब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः॥
धात्री माताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः॥ २॥

इस प्रकार मूल प्रकृतिकी अधिष्ठात्रीके रूपमें होते हुए भी सुदामाके शापके कारण मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होनेकी बात आयी है। राधाके नाम-उच्चारणका माहात्म्य बतलाते हुए तान्त्रिक ग्रन्थोंका कहना है कि राधा श्रीकृष्णकी आदि कार्य-कारणरूपा व्यक्त शक्ति है। अतः इनका प्रथम और श्रीकृष्णका पश्चात् नाम उच्चारण करनेसे मनुष्य अनेक पापोंका नाश कर गोलोकमें जाता है—

कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे............... ।
एकात्माहं च विश्वेषां........ब्रह्मादितृणादिषु॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं चराचरम्।
स एव पण्डितो योगी गोलोके याति लीलया॥

इस प्रकार बहुत उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिससे राधाको आदिशक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया है। फर्कुहरने अपने Religious guest of India नामक ग्रन्थमें लिखा है कि तान्त्रिकोंकी साधनास्थलियोंमें दो (युगल) रूपमें स्त्री-पुरुषकी पूजा की जाती थी। (यह विचार उन्होंने हालमें हुई खुदाइयोंकी मूर्तियोंको देखकर लिखा था) जो कान्हके नामसे कही जाती थी। स्त्री कौन थी इसमें वे ठीक निर्णय नहीं करते हैं। अनुमानतः उन्होंने राधा ही माना है।

समय-चक्र बड़ा परिवर्तनशील एवं क्रमशः विकास और ह्रासका इतिहास होता है। एक समय वह था जिसमें भारतकी सभी मूर्तियों और देवी-देवताओंकी आकृतियोंको भगवन्मय एवं जगत्के समस्त प्राणियोंको एक—आत्ममय पवित्र दृष्टिसे ईश्वरका अंश मानकर उनकी आराधना-पूजा की जाती थी। यहाँतक कि—'**सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच-भूतं प्रणमेदनन्यः**'। किन्तु वहीं सब कुछ होनेपर भी समयके चक्रसे भारतीय सात्वत सत्पथके विरोधियों द्वारा राधाके विषयमें अनेक धारणाएँ फैलायी गयीं और उनके आदर्शको पंकमग्न किया गया। फिर भी सत्य वस्तु सत्य ही रहती है। असत्य उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

अतः इस विषयमें विद्वानोंसे अनुरोध है कि राधा ही नहीं प्रत्येक भारतीय प्राचीन विषयोंमें गम्भीर मनन कर उसकी वास्तविक स्थितिपर विचार करना चाहिए। हमारे इतिहास, अध्यात्म, दर्शन, धर्मके अधिकांश तथ्य अन्धकारमय हैं। उनके स्वरूपका ठीक-ठीक अध्ययन ही अपना लक्ष्य होना चाहिए। इसके विपरीत अनेक युगोंके व्याप्त भ्रान्तियोंका युक्तिपूर्वक अध्ययन कर उनका परिमार्जन करना चाहिए। ●

एक सामयिक विचार—

आइये, वैकुण्ठ चलें

श्री गोविन्द शास्त्री

★

धनी समझता है—साधु सुखी है, मजदूर समझता है—धनी सुखी है, अधिकारी समझता है—व्यापारीके ठाट हैं और व्यापारी सोचता है—अधिकारी आनन्दमें हैं। साधु यही सोचकर श्रीमन्तोंको आकर्षित करता है और धनी, अधिकारीको प्रसन्न करता है। इन सबका फलितार्थ यह सामने है कि व्यक्ति साधु, व्यापारी, मजदूर और धनवान् बननेका स्वांग भरनेके लिए बेतहाशा भग रहा है पर जिस बातसे वह उद्विग्न है उसको दूर नहीं कर सकता, जिस सुखको वह पाना चाहता है उसे पा नहीं सकता और एक ही व्यक्ति एक साथ धनी, निर्धन, साधु और मजदूर नहीं बन सकता इसलिए उसका भ्रम बरकरार है, उसकी दौड़ चालू है। यदि इन सब प्रतीक वर्गोंको एकत्र कर लिया जाय तो परिणाम केवल यह निकलेगा कि सब परेशान हैं, सभी संत्रस्त हैं। जब व्यक्तिने यह सोच लिया कि सुख-दुःख केवल व्यक्तिके पूर्वाग्रह हैं और इनका सम्बन्ध व्यक्तिके मनसे हैं अन्यथा न कोई वस्तु सुखका कारण है, न दुःखका, फिर भी वह इस तथ्यको आत्मसात् नहीं कर सकता, इस स्वर्ण सिद्धान्तको व्यवहार सूत्र नहीं बना सकता।

आखिर इस परेशानीका मूल कहाँ और कबसे है? भारतीय चिन्तनने इसका कारण कर्मवाद किंवा नियतिवाद बताया है किन्तु इसमें केवल व्यक्ति ही सर्वांशतः कारण हो—यह बात नहीं है। व्यक्तिने जितनी परेशानियाँ और पूर्वाग्रह उत्पन्न किये हैं समष्टिने उनको गुणित कर दिया है। समाज आवश्यक था किन्तु समाजके साथ ही व्यक्ति किंवा व्यक्तियोंपर उसका अनिवार्य दबाव पड़ना भी सैद्धान्तिक बात थी। मान लिया भूख व्यक्तिकी सार्वभौम और सार्वकालिक आवश्यकताकी धुरी रही है और उसकी पूरक कामेच्छा, समाजका अपरिहार्य और स्वभावसिद्ध कारण रही है फिर भी इस एक इच्छा—जिसे मनुने वित्तैषणा कहा है—से पुत्रैषणा अनिवार्य रूपसे जुड़ी हुई है और इन दोनोंकी सम्भूति लोकैषणाको जन्म देती है। वैसे तो पुत्रैषणासे ही समाजका दबाव प्रारंभ हो जाता है पर लोकैषणातक आते-आते तो यह दबाव अत्यन्त उग्र हो जाता है और व्यक्तिका सन्त्रास असीम हो जाता है। यदि आज निष्पक्ष होकर समझें तो व्यक्तिको केवल प्रतिक्रिया मानना पड़ेगा,. समाजकी मान्यताओंने उसको सब तरफसे जकड़ रखा है और उसकी ठीक वैसी ही स्थिति मालूम पड़ती है जैसी किसी लम्बी

कतारमें ठसे हुए व्यक्तिकी। यदि व्यक्ति उस कतारसे सन्तुष्ट हो तो कोई बात नहीं किन्तु वह कतार होकर भी व्यक्ति है। जिस समय वह समष्टिबोधसे हटकर व्यक्तिबोधपर आता है उसी समय उसमें द्विविधा तीव्र हो जाती है और वह अपने आपको कुण्ठित-सा अनुभव करता है। भौतिक सम्पदाएँ इस द्विविधाको उग्रतर कर देती हैं और व्यक्ति एक समन्वयवादी मार्ग ढूँढ़ने लगता है। इस सामञ्जस्यको अथवा सुखको पानेके लिए वह नियम बनाता है, सामाजिक मान्यताओंमें संशोधन करता है और उस सनातन प्रश्न (भूख)का कोई संगत समाधान ढूँढ़ता है पर समाजसे हटकर वह देखता रहा है, देखता रहेगा। समूहके दबावको वह नहीं मानना चाहता है पर मानना पड़ता है—यही है उसकी चिरन्तन समस्या।

इस समस्यासे आजका मानव अधिक त्रस्त हो सकता है क्योंकि उसके जीवनमें व्याप्त भौतिकता और बहिरंग सम्पदाके जंजालने उसके जीवनको जटिल और कुण्ठित बना दिया है पर यह कुण्ठा उसके लिए अपरिचित नहीं है। इस भीषण मनोव्यथासे जब वह पीड़ित रहता आया है तो उसने इसके प्रत्येक पक्षको देखा-परखा और सोचा-समझा है तथा समाधान भी खोजा है। भारतीय चिन्तनने जहाँ तीन इच्छाओंको व्यक्तिकी नियामक शक्ति माना है वहाँ स्वर्ग, नरक और मर्त्यके रूपमें तीन लोकोंमें भी विश्वास रखा है। यह जगत् जिसमें व्यक्ति कर्म करता है, एक केन्द्रबिन्दु है। यहाँसे व्यक्तिका निर्माण होता है, यहींसे व्यक्ति अपना निर्माण करता है इसलिए यदि कोई यह कहे कि स्वर्ग और नरक यहीं पर हैं, तो कोई अयुक्त बात नहीं है। शेष दो लोक तो परिणाम हैं, वहाँ व्यक्तिको कोई स्वतन्त्रता नहीं होती। वहाँ तो उपभोग मात्र करना होता है किन्तु इस मर्त्यलोकमें उसे कुछ करना भी होता है इसलिए उस करनेके प्रसंगमें भोगना भी होता ही है फिर भी वह स्वतन्त्र है और परतंत्र है। इस केन्द्रमें दोनोंका अस्तित्व है—स्वर्गका भी, नरकका भी। यहाँसे स्वर्गोपभोगका अधिकारी भी होता है तो नरककी विभीषिकाका भी। स्वर्गका उपभोग करनेके बाद भी वह यहाँ आता है और नारकीय यातना भोगनेके बाद भी। नरक और स्वर्गके अस्तित्वकी सिद्धि करना मेरा लक्ष्य नहीं है पर उनकी अनुभूतिसे व्यक्ति अपरिचित नहीं है। नरकमें उसपर अस्वाभाविकताओंका असहनीय भार पड़ जाता है, स्वर्गमें अनुकूलताओंका। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि नरक ऐसा है और स्वर्ग ऐसा—अथवा नरक और स्वर्ग यहींपर हैं। स्वर्ग, सुखका प्रतीक है किन्तु वह भी कर्मसे बँधा हुआ है और जब वह कर्मसे जुड़ा हुआ है तो उसमें भी सापेक्ष स्थिति है तथा उसका भी परिणाम है। नरक तो अपने आपमें अकल्पनीय कष्टोंका साकार प्रतीक है ही पर स्वर्ग भी उससे अछूता नहीं है। भय और कुण्ठा उसके साथ जुड़ी हुई हैं ही। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' कहनेवाले महापुरुषोंने उस सुखके निधान स्वर्गमें भी विकृतियोंको स्वीकार किया ही है। स्वयं देवाधिप इन्द्रकी अतुल शक्ति और अक्षय वैभव भी उसे सुखी-सन्तुष्ट नहीं रख सकते, इसलिए वह सशंक है, भीत है और कुण्ठित है। इन्द्रके सम्बन्धमें वर्णित उपाख्यानोंसे अथवा तपस्या करनेवालोंके समक्ष विघ्नोंकी परम्परा उपस्थित करनेकी प्रवृत्तिसे यह स्पष्ट है कि स्वर्ग, सुखोपभोगकी उच्चतम स्थली है पर वहाँ भी त्रास है, कुण्ठा है।

भारतीय चिन्तनने इन संत्रासों और शंकाओं, भय और कुण्ठाओंको स्वर्गसे भी परे जाकर देखा है। कर्मजनित और भौतिक सापेक्षताओंके कारण और परिणामोंको समझा है और व्यक्तिके लिए परमार्थतः निरपेक्ष पथका अंगुल्या निर्देश किया है। इन व्यक्तिगत और समष्टिगत कुण्ठाओंका अतिक्रमण करनेके लिए उसने निरपेक्षवाद अथवा मोक्षकी स्थापना की है तथा वैकुण्ठलोकका प्रारूप बताया है। वास्तवमें स्वर्गतक सुख है, परम सुख, किन्तु सुख कर्मका अनुकूल परिणाम है इसलिए वह प्रिय है और सुख एक सापेक्षता है इसलिए उसका विपर्यय भी है—दुःख। यही है स्वर्ग और नरक। भारतीय तत्त्वदर्शी साधकोंने सुखसे आगे आनन्दकी खोज की है, ऐसे आनन्दकी जो न केन्द्र है, न क्षितिज है। आनन्दकी इस अलौकिकताका प्रमाण यही है कि उसे भगवान्का स्वरूप माना है इसीलिए उसकी कोई विपरीत स्थिति नहीं है। सुखका विपरीत दुःख है पर आनन्दका विपरीत तो कोई हो ही नहीं सकता। वास्तवमें यह वह परमोत्कर्षकी स्थिति है जहाँ सारी भौतिक सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। मोक्ष और वैकुण्ठ दोनों एक-सी अनुभूतियाँ होकर भी भिन्न हैं। मोक्षमें व्यक्तिका विशालमें विलय हो जाता है और वैकुण्ठमें व्यक्तिका स्वतन्त्र अस्तित्व अक्षुण्ण रहकर भी सामान्यतासे ऊपर उठ जाता है। जागतिक अनुभूतियोंकी सीमामें आनन्द नहीं आता और आनन्दकी सीमामें भौतिक अनुभूतियाँ अस्तित्वहीन हो जाती हैं। इस स्थितिका साम्य उस कतारमें ठसे व्यक्तिकी स्थितिसे भी हो सकता है। अर्थात् यदि वह व्यक्ति, जो कतारमें ठस रहा है यदि अपने आपको कतार समझ लेता है तो उसका मोक्ष ही हो जाता है क्योंकि व्यक्तिका विशालमें विलय हो जाता है (ऐसी ही मोक्षकी स्थिति मर्यादापुरुषोत्तम रामके जीवनमें दिखाई देती है)। इसके समानान्तर, व्यक्ति यदि अपने स्वतन्त्र अस्तित्वसे परिचित होकर, अपने क्षुद्र अस्तित्वसे मोह रखकर भी सहज-निर्बन्ध जीवनकी गरिमाको अनुभव करता है तो वह वैकुण्ठवासका-सा अनुभव करता है (लीलापुरुष श्रीकृष्णका जीवन ऐसे ही वैकुण्ठवासका उज्ज्वलतम उदाहरण है)।

प्रश्न सामयिक परिवेशमें और युगीन सन्दर्भमें जी रहे इस समाजका है, इन व्यक्तियोंका है जो भयभीत हैं, शंकित हैं, कुण्ठित हैं और व्यक्तिपरक हैं। संत्रास, कुण्ठा, टूटन जैसे शब्द इस युगके बुद्धिवादीके लिए एक कारा हैं। सामान्य व्यक्ति इन शब्दोंको जीवनमें अनुभव करके भी उनकी विभीषिकाओं और द्विविधाओंको समझ नहीं पाया और बुद्धिवादी इन शब्दोंको सजीव देखकर भी इनका प्रतीकार नहीं कर पाया। यदि कर पाता तो आज जन-मानस इस रूपमें क्षुब्ध और उद्वेलित नहीं होता। हो सकता है इसके लिए समाजकी आवश्यकता और उस समाजके कारण जन्मनेवाली (गुणित हो रही) परेशानियाँ एक प्रकारके अप्रतीकार्य कारण हों फिर भी समस्याका समाधान तो उसके साथ जुड़ा हुआ रहता ही है। वास्तवमें जिसका (सामान्य जनका) प्रश्न है और जिसे (बुद्धिवादीको) इसका उत्तर ढूँढ़ना है, दोनों ही एक वृत्तमें बँधे हुए हैं, उसका अतिक्रमण करनेकी विधि कोई नहीं बताता और परिणाम यह होता जा रहा है कि व्यक्ति और समाज मानसिक तनावसे खिंचते जा रहे हैं, द्विविधा विविधा होकर विखण्डन करती जा रही है।

आइये, इस विषमताका समाधान हम स्वयं ही खोज निकालें। समाजका मूर्धा (विचारक वर्ग) जो कहता है उसको भी सुनें और जो प्राचीन विचारकोंने कहा है उसे भी समझें। यह सत्य है कि आज मोक्षके लिए चिन्तन और प्रयत्न करनेका समय नहीं है, केवल इसीलिए नहीं कि वह नितान्त व्यक्तिगत उपलब्धि है बल्कि इसलिये भी कि आजका व्यक्ति इन भौतिक आकर्षणोंसे इस सीमातक जकड़ा हुआ है कि उसके लिए यह सोच पाना भी कठिन होगा। स्वर्गसुख तो उसे (भले ही सीमित वर्गको ही सही) मिल ही रहे हैं पर भारतीय और सामयिक दोनों ही सिद्धान्तोंके अनुसार वे सुख, भय और कुण्ठासे रहित नहीं हैं इसलिए व्यक्तिके व्यक्तित्वको अक्षत रखते हुए उसे इन उग्र होते हुए सन्त्रासोंसे मुक्त करें और वह मार्ग है वैकुण्ठका, भले ही उस मार्गमें उसे यथार्थ वैकुण्ठका-सा परमानन्द न मिले पर इन तनावोंसे मुक्ति मिलनेपर भारहीनता जैसा अवाच्य अनुभव तो होगा ही और यह व्यक्तिस्तरपर होकर भी समष्टिको प्रभावित करनेवाला होगा।

भय और कुण्ठा क्यों पनपती हैं? क्षुद्रतासे, संकीर्णतासे। व्यक्ति सुरक्षा चाहता है। किससे? अपने सरीखे ही व्यक्तिसे। व्यक्तिके लिए इससे अधिक विडम्बना क्या होगी कि वह स्वयंसे ही भयभीत हो और स्वयंसे ही सुरक्षाकी आकांक्षा रखे किन्तु इन सारी विडम्बनाओंका जन्म उसी संकीर्णतासे होता है। व्यक्ति इस सुरक्षाकी आकांक्षा, आजके सामाजिक विधानके अनुसार, सरकारसे या एक सीमित वर्गसे करता है। (भारतकी जातिप्रथा और दूसरे देशोंका रंगभेद इसी परमुखी वृत्तिके प्रतीक हैं।) किन्तु क्या सरकार इस प्रकारकी कुण्ठाओं और सन्त्रासोंसे कभी समाजको मुक्त कर सकती है? व्यक्तिको विकुण्ठ बनानेके लिए किस देशने विधानों और नियमोंका जंजाल नहीं बुना पर यथार्थमें किस देशकी जनताने कुण्ठारहित और भयविहीन जीवनका स्वाद चखा? शायद किसीने नहीं, अमरीका जैसे सम्पन्न और भारत जैसे मध्यम श्रेणीके देशने भी नहीं।

आज समस्याका तात्कालिक समाधान करनेके लिए व्यक्तिको स्नेहशील बनानेकी चेष्टा करनी है। स्नेहकी एक बिन्दु सारे सरोवरको समेट लेती है, ठीक ऐसा ही स्नेह सम्पर्क-सूत्र बन सकता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को व्यवहार दृष्टि दिये बिना संकीर्णताका नाश नहीं हो सकता। व्यक्तिका साध्य भले ही चिरन्तन तृष्णा और एषणा हो किन्तु साधनके रूपमें स्नेहकी सुकुमारताको ही महत्त्व देना है। व्यक्तिकी व्यक्तिबुद्धि जब समग्र संसारमें छाये व्यक्तियोंमें अपना ही दर्शन करेगी तो वह निष्ठुर नहीं हो सकती, संकीर्ण नहीं हो सकती। हमारे ही क्या विश्वके समस्त धर्मोंका साध्य यही आत्मदर्शन है। इस आत्मदर्शनको प्रभावशाली बनानेके लिए प्राचीन सिद्धान्तोंको भी नये किन्तु सशक्त रूपमें प्रस्तुत करना परमावश्यक है। कुण्ठा और संत्रास जैसे शब्दोंको अथवा स्थितियोंको समाजके समक्ष रखना और उनसे निवृत्ति पाना एक 'प्रकार' हो सकता है किन्तु उसमें न्यूनाधिक रूपमें वर्तमानकी विभीषिकाओंको भी विवेचन-विश्लेषणका विषय बनाना होगा ही। एक अपकर्षको, विशेषतः ऐसे अपकर्षको जिसे हम अनुभव कर रहे हैं, केन्द्रबिन्दु बताकर किसी उत्कर्ष की ओर इंगित करनेसे सुन्दरतर रहेगा ऐसे भावनात्मक वातावरणका निर्माण जिसमें केवल स्नेह है,

उदारता है और आत्मभाव है। भय, स्वार्थ और संकीर्णताके समक्ष विकुण्ठ बननेकी आकांक्षाको सजीव बनानेका मार्ग भी एक मार्ग है पर सीधा और प्रत्यक्षगामी मार्ग उभयार्थसिद्धकर होगा। यदि व्यक्तिने स्नेहको साधनके रूपमें भी स्वीकार कर लिया तो ये कारायें स्वतः नष्ट हो जायेंगी। असत्यको बुरा बताकर सत्यको ग्रहण-करनेकी शिक्षा निषेधसे विधेयकी शिक्षा है। क्या सीधी विधेयवादी पद्धतिको स्वीकार नहीं किया जा सकता ? विधेयको स्वीकार करनेसे निषेध अपने आप अव्यवहरणीय बन जायगा।

इस लक्ष्यका साधन सरकार नहीं कर सकती क्योंकि सरकार और नियम किसी-न-किसी रूपमें असहज हैं, भले ही वे व्यक्तिकल्याणके ही लिये क्यों न हों। मुख्यतः यह कार्य व्यक्तिका है, व्यक्तियोंका है और समस्त विश्वका है। यान्त्रिक सभ्यताने व्यक्तिके मनको जड़ बना दिया है और वह विखण्डित होता जा रहा व्यक्तिमन नीरस बन गया है, उसमें दरारें पड़ गयी हैं, संकीर्णता आ गयी है और इसके लिए सरसता अथवा स्नेहशीलता ही एकमात्र उपाय हो सकता है। यह भी सुविदित सत्य है कि व्यक्तिके इस स्नेहदर्शनकी विचार-तरंगें परोक्षरूपसे किन्तु समर्थरूपसे व्यक्तियोंको प्रभावित करेंगी और व्यक्ति उस दिनके प्रति आश्वस्त हो सकेगा जब वह विकुण्ठ जीवनका उपभोग कर सकेगा।

कृष्ण-कृपा

दैन चहै करतार जिन्हें सुख,
सो तौ रहीम टरै नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीन्हें बिना,
धन आप ही आवत हाथ पसारे॥
देव हँसे मन ही मन में,
विधना के प्रपंच टरें नहीं टारे।
पूत भयौ बसुदेव के भौन में,
नौबत बाजत नन्द के द्वारे॥

'रहीम कवि'

तुलसीका श्रृङ्गार-वर्णन

डा० हरिनन्दन पाण्डेय

★

भारतीय-साहित्याकाशमें पन्द्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें एक ऐसा पुंजभूत नक्षत्र उदित हुआ, जिसने अपनी प्रकाश-रश्मिसे कोटिशः सूर्योंके प्रकाशको मन्द कर सम्पूर्ण विश्वको आलोकित किया। यह ज्योतिमान नक्षत्र थे—गो० तुलसीदास।

'साहित्य-दर्पण'के रचयिता श्रीविश्वनाथ काव्यकी परिभाषा बतलाते हुए लिखते हैं :—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसात्मक यानी जिस वाक्यसे किसी रसका ज्ञान हो, तथा अलौकिक आनन्द ही अनुभूति हो, उसे ही 'काव्य' कहते हैं। 'रस-गंगाधर'में काव्यके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं :—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थके प्रतिपादक शब्दोंको काव्य कहते हैं। श्रीविश्वनाथने आगे लिखा है—'रस्यते इति रसः।' अर्थात् रस वह वस्तु है, जिसका रसास्वादन किया जा सके। काव्यशास्त्रमें रसकी शक्ति अलौकिक एवं आनन्ददायिनी बतलायी गयी है। सारांश यह कि रस ही काव्यकी आत्मा है। कहा भी गया है—'रस एवात्मा।'

संस्कृत-वाङ्मयमें नौ रसोंका विधान किया गया है। इन्हीं नौ रसोंमें श्रृंगार-रस भी है। श्रृंगार-रसको समस्त रसोंसे महत्त्वपूर्ण माना गया है।

एक युग था कि हमारे यहाँ श्रृंगार-विषयक कविताओंका बाहुल्य रहा। यहाँ तक कि इस युगको 'श्रृंगार-काल'की संज्ञा प्रदान की गयी। इस कालमें श्रृंगार-विषयक इतनी रचनाएँ सृजित की गयीं कि समाज जलने लगा। रीतिकालीन कवियोंने ऐसी स्वच्छन्दता और निरंकुशतासे इस रसका उपयोग किया कि समस्त साहित्यिक एवं सामाजिक श्रृङ्खलाएँ टूटने लगीं। यही नहीं, इस रसके कारण ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, राजनीति, धर्म आदि विषयोंकी लेखन-प्रणालीपर पटाक्षेप हो गया। फलतः युवकों तथा राजाओंमें नपुंसकत्व और स्त्रैणभावोंका प्रादुर्भाव होने लगा क्योंकि श्रृंगार-रसके नामपर अत्यन्त अश्लील उपादानोंसे कविता-सुन्दरी सँवारी जाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन कविता मात्र मनोरंजनकी वस्तु बनकर रह गयी।

हमें यह लिखते हर्ष और गर्व दोनों होता है कि प्रातःस्मरणीय गो० तुलसीदासजीकी रचनाएँ अपने पूर्ववर्ती कवियोंकी कृतियोंसे प्रभावित नहीं हैं। गोस्वामीजीने जहाँ भी श्रृंगार-

रसका व्यवहार किया है वहाँ आपने मर्यादापूर्ण संयत भाषामें किया है। हम तो यहाँ तक कहते हैं कि गोस्वामीजी जैसा सतर्क और मर्यादावादी कोई दूसरा नहीं है। सीताके दिव्य सौन्दर्यका आपने पर्याप्त चित्रण किया है, परन्तु, क्या मजाल कि कहीं भी सीमाका अतिक्रमण हुआ हो। यही कारण है कि आज समस्त सुधी समीक्षक एक स्वरसे कहते हैं कि तुलसीकी काव्य-प्रतिभाका चमत्कार भक्ति, भजन, और वैराग्य विषयक वर्णनमें तो महत्त्व-पूर्ण है ही, उनका शृंगार-वर्णन भी अत्यन्त ही मर्यादापूर्ण एवं चित्ताकर्षक हुआ है। कहनेके लिए सूर, देव, बिहारी, पद्माकर, मतिराम, विद्यापति आदि शृंगारिक कवियोंने अपने-अपने आराध्यदेवको माता-पिताके रूपमें आराधना की है, परन्तु, हमारे साहित्य-प्रेमी पाठक इस तथ्यसे विमुख न होंगे कि इन शृंगारिक कवियोंने इनका कैसा वर्णन किया है। 'कुमार-सम्भव'में कालिदासने शिव-पार्वतीके प्रणयका वर्णन कर औचित्यका अतिक्रमण कर दिया है। परन्तु, गोस्वामीजीने शंकर-पार्वतीको सदा ही पूज्य और आराध्य माना है। जैसे :—

'जगत मातु पितु सम्भु भवानी।
तेहि शृंगार न कहेउँ बखानी॥'

सारांश यह कि तुलसीने धड़ल्लेके साथ शृंगार-रसका प्रयोग किया है परन्तु मर्यादाका उल्लंघन नहीं हुआ है। बिहारीका एक दोहा देखिये। नायक परदेशसे आया हुआ है। नायिकाके आनन्दकी सीमा नहीं है। रात्रिका आगमन अनुभव कर वह सारे घरेलू कामोंको शीघ्रतासे समाप्त कर रही है। सखियाँ पास बैठी हैं। पिया-मिलनकी उत्कंठासे नायिका अपनी सहेलियोंको भुलावेमें डाल रही है। कभी वह झूठ-मूठ पलकें झुकाती है, तो कभी बार-बार जम्हाई लेती है, जिससे कि सखियाँ उठकर चली जायँ। यथा :—

'झुकि झुकि झपकौहीं पलनि,
फिरि - फिरि मुरि जमुहाय।
बीदि पियागम नींद मिस,
दीं सब सखी उठाय।'

अब गोस्वामीजीकी एतद्विषयक पंक्तियाँ देखिये—

'उठि सखि हँसी मिस कहि मृदु बैन।
सिय - रघुबीरके भये उनींदे नैन॥'

जहाँ बिहारीकी नायिका सखियोंको दूर करने केलिए नाना भाँतिके कृत्रिम प्रयत्न करती है, वहाँ तुलसीकी सखियाँ स्वयं इतनी सयानी हैं कि एकान्तसेवन-काल समझकर मृदुवचनसे 'सिय रघुबीरके भये उनींदे नैन' कहकर तथा मुस्कुराकर चल पड़ती हैं।

कृष्ण-काव्यके अग्रणी महाकवि सूरदासकी रचनाएँ हिन्दीकी अक्षय निधि हैं। आपकी अधिकांश कृतियाँ शृंगार-रससे ओत-प्रोत हैं। यही कारण है कि आपने भी यत्र-तत्र मर्यादाका उल्लंघन किया है।

प्रसंग जनकपुरका है। गोस्वामीजी श्रीरामका सीतासे प्रथम मिलन करवा रहे हैं। यहाँ भी आपने जिस मर्यादाके साथ दोनोंका मिलन करवाया है वह स्तुत्य है। सीताके कंकण, किंकिणी और नूपुरोंकी मादक झंकारको सुनकर रामचन्द्र चकोर-सा अपलक नेत्रोंसे देखने लग जाते हैं। सीताके स्वर्गिक सौन्दर्यके प्रति भगवान्‌की कल्पना क्या रूप लेती है, इसे तुलसीके शब्दोंमें ही सुनिये—

'जनु बिरंचि सब निज निपुनाई।
बिरचि बिस्व कंह प्रगट दिखाई॥'

इसी भाँति सीताकी रूप-राशिपर मुग्ध होकर उपमाकी खोज करने लगते हैं। परन्तु सटीक उपमा उपलब्ध नहीं होती है। तभी थककर कह उठते हैं—

'सब उपमा कवि रहेउ जुठारी।
केहि पटतरिय बिदेह - कुमारी॥'

इस प्रथम-मिलनपर कहीं भी कृत्रिमता नहीं है, और न कहीं भारतीय शील-मर्यादाका अतिक्रमण ही है।

अपनी संगिनीके साथ राम ग्रामीण अंचलोंसे होकर वन जा रहे हैं। दंपतिकी अलौकिक रूप-राशिसे विमुग्ध होकर ग्रामीण महिलाएँ अपनी नारी-सुलभ लज्जासे सीतासे जिज्ञासा करती हैं—

'कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥'

ग्रामीण महिलाओंकी इस जिज्ञासाका अंत सीता किस खूबीके साथ कर डालती हैं, यह तुलसीकी निजी विशेषता है। सीता उत्तर देती हैं—

'सहज सुभाव सुभग तन गोरे।
नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि वदन मृदु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि।
निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि॥'

भारतीय आदर्श कुल-वधूका ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र असंभव ही है। इसमें मर्यादा तथा माधुर्यका जो संमिश्रण है, वह तुलसीसे ही संभव हो सका है। नेत्रके इंगितसे एवं मंद मुस्कानसे अपने पतिदेवका परिचय देना कितना अलौकिक है, और कितना मर्यादित!

'मानस'में स्थान-स्थानपर पति-पत्नीके बीच आदर्श प्रेमका बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रसंग अरण्यकाण्डका है। यथा—

'एक बार चुनि कुसुम सुहाये।
निज कर भूषन राम बनाये॥
सीतहि पहिराये प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुन्दर॥'

पति-पत्नीके प्रेम-संभाषण और अनुराग-प्रदर्शनका इससे बढ़कर दूसरा ज्वलंत उदाहरण कहाँ प्राप्य है ?

कालिदासने 'रघुवंश'के १२वें सर्गमें सीता और जयंतकी कथाका जैसा अश्लील और अभारतीय चित्रण किया है वह प्रशंसनीय नहीं है। आपने लिखा है—'ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः'। परन्तु मर्यादावादी कवि तुलसीने इसी प्रसंगका यों वर्णन किया है—

'सीता चरन चोंच हति भागा।
महामन्द मति कारन कागा॥'

सारांश यह कि गोस्वामीजीने जहाँ भी शृंगार-रसका वर्णन किया है वहाँ सतर्कतासे काम लिया है। क्योंकि आप इस सिद्धान्तके समर्थक थे कि 'अश्लील भावोंसे भूषित साहित्य उसी भाँति त्याज्य है, जिस भाँति स्वर्णजटित शालसे आवेष्टित मदिरा-पात्र।'

इस भाँति हम देखते हैं कि गोस्वामीजीका शृंगार-वर्णन लोक-सामान्य भाव-भूमिपर प्रतिष्ठित होकर ऊपर उठनेका प्रयास करता है। तुलसीकी यही मौलिकता है।

यह तुलसीका सौभाग्य था कि आपने राम जैसे पुरुषोत्तम व्यक्तिको अपना चरित्रनायक चुना। साथ ही यह श्रीरामका पुण्य था कि आदि-कवि वाल्मीकिके हजारों वर्ष बाद तुलसी जैसा सुकवि उन्हें प्राप्त हुआ, जिन्होंने उनके पावन चरितको सुसंयत भाषामें लेखनीबद्ध कर उन्हें अजर-अमर बना दिया। क्योंकि दसरथका राम हमारे बीच नहीं है, परन्तु तुलसीका राम आज भी विद्यमान है।

श्रावण माहकी पुण्य सप्तमी तिथिपर हम उस सच्चरित्र साधु, प्रकांड पण्डित, महान् समन्वयवादी; तथा अनन्य राम-भक्तके पाद-पद्मोंपर श्रद्धाके दो सुमन सादर समर्पित कर रहे हैं। जय तुलसी ! जय जगत् !!

मीरांके विषयमें उसके माता-पिताका परस्पर संलाप—

माँ ! मुझको श्रीकृष्ण बुलाते !

श्री परमेश्वर द्विरेफ

☆

उसको संबोधित-से करते फिर मीरांके बापू बोले।
देखो, तुम जो नित्य रातदिन सोचा करती हौले-हौले ।।

ऐसा करना ठीक नहीं है, इससे तन कृश हो जाता है।
सभी जानते यों चिन्तनमें कभी न कुछ आता-जाता है ।।

इस चिन्तनका दुष्प्रभाव फिर 'मीरां' पर भी बहुत पड़ेगा।
जैसी मां, वैसी ही पुत्री हो जायेगी, मन उजड़ेगा ।।

इस नन्हे-नन्हे पल्लवको सदा खेलने दो, खाने दो !
फूल-फूलकर, बढ़-खिल-खिलकर वृन्तों पर जी भर छाने दो !

प्रिय गिरधर गोपाल बताकर यह क्या ऐसी आदत डाली ?
सोते-जगते, उठते-चलते, रखती प्रतिमा काली-काली।

अरे, आप भी कैसे भोले भ्रममें ही भूले पड़ते हो !
साधारण-सी बात रही पर, जाने क्यों इतना लड़ते हो ?

मुझको अपनी नन्हीं बिटिया बहुत, बहुत प्यारी लगती है।
साथ-साथ मेरे प्रातः ही ध्यान, चिन्तनाको जगती है ।।

लघु-लघु स्वरका मृदु-मृदु कंपन आत्माको पावन कर देता।
क्षमा, धैर्य, सन्तोष, सत्यता, अन्तरालमें शिव भर देता ।।

हरी भरी दूर्वा दोनेमें फूलोंका सञ्चय कर लाती।
मधुमय फल पक्वान्न आदिसे फिर 'गिरधर'को भोग लगाती ।।

इस छोटी सी ही दुलहिनने अपना प्रिय पहचान लिया है।
जग, जीवन क्या है, इसने तो इसी आयुमें जान लिया है ।।

इसका तो संसार पृथक् है उसकी तो रचना न्यारी है।
इसे ज्ञात है, जिस अमृतको जगती खोज-खोज हारी है ।।

इसकी साथिन गुड़ियोंके खेलोंमें ही खोयी रहती हैं।
जगके सुख-दुख-हर्ष कष्टमें डूब-डूब बहती-दहती हैं ।।

पर इसकी एकान्त साधना इसके पूर्वजन्मका फल है।
क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोहमें इसका कभी न मन चंचल है॥
यों ही कह देनेपर इसने उसको प्रिय, आराध्य बनाया।
ऋषि-मुनि, जीवनमें भी जिसकी नहीं जान पाये कुछ माया॥

समझाऊँ तो भी कह देती माँ! तुमने ही तो बतलाया।
इसमें दोष नहीं, यह तो सब है उस ही ईश्वरकी माया॥
मस्तकपर टिकिया चन्दनकी लगा, हाथमें लेकर माला।
यों लगती मानो, जगतीमें ढूँढ रही शाश्वत उजियाला।

चरणामृतमें तुलसी लेना तो यह कभी नहीं बिसराती।
प्रतिमाका प्रतिक्रमण प्रातमें, सायं यों दो बार लगाती॥
आश्चर्यान्वित वे फिर बोले मैं जब जो देता हूँ पैसे।
वे सबके सब ही प्रतिमापर रख देती वैसेके वैसे॥

उनकी कुछ भी चीज न खाती, कभी न रखती है वे गिन-गिन।
यह 'गिरधर'की भक्त निराली, यह तो पक्की बनी पुजारिन॥
इसी बीचमें सहसा 'मीरां' सोते-सोते बोली, बहकी।
मानो अर्धरात्रिमें कोई चिड़िया चोंच खोलकर चहकी॥

बार-बार ही हँसी खिलखिला, फिर गंभीर बनी चिन्तामय।
उन दोनों ने देखा, इसको बुरे स्वप्नसे हुआ कहीं भय॥
आशंका थी, चेत कराकर लगे पूछने भयकी बातें।
वह बोली निर्लिप्त भावसे—माँ! मुझको श्रीकृष्ण बुलाते॥

कालिन्दीके रम्य पुलिनपर, तरु छायामें वेणु बजाते।
हरी-भरी कोमल दूर्वापर बैठे-बैठे धेनु चराते॥
उनकी ओर अग्रसर होते ही पवमान भयंकर आया।
धूमिल, अंधड़लीन दिशाएँ, अस्त-व्यस्त पथपर तम छाया॥

भूल गयी, पथ मिला न कोई, डावाँडोल हुई, मन हारा।
रोयी, पल प्रतिपल रोयी तो 'गिरधर'ने दे दिया सहारा॥
तिमिर तिरोहित, ज्योतिर्मय जग, ज्योंके त्यों वे थे मुस्काते।
गायन स्वर-लहरीमें भूले, प्रतिपल अपने पास बुलाते॥

मात-पिता निश्चल, अवाक् थे, दोनों देख रहे न अघाते।
उनके उरमें यही रागिनी—माँ! मुझको श्रीकृष्ण बुलाते॥

(मीरां महाकाव्य से)

अवतार कालकी मनोरम झाँकी—

बालकृष्णका अविर्भाव

श्रीदेवधर शर्मा

★

आगामी ३ सितम्बरको श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका पुण्यपर्व आ रहा है। उस दिन देशके कोने-कोनेमें, नगर-नगरमें तथा गाँवों और घरोंमें भी देवकीनन्दनके अविर्भावका महोत्सव धूम-धामसे मनाया जायगा। आइये, आज हम भी बालकृष्णके प्रादुर्भाव-काल तथा दिव्यरूपकी झाँकी मनके नेत्रों द्वारा करें। अन्तरात्माकी दिव्यज्योतिसे उनकी आरती उतारें।

सारी मथुरा नगरी नीरव निशामें प्रसुप्त है। निशीथका अन्धकार सब ओर व्याप्त है। रातके सात मुहूर्त निकल गये हैं, आठवाँ उपस्थित है। सर्वोत्कृष्ट शुभ लग्नका शुभागमन हुआ है। उस पर केवल शुभ ग्रहोंकी दृष्टि है, अशुभ ग्रहोंकी नहीं। रोहिणी-नक्षत्र और अष्टमी तिथिके संयोगसे जयन्ती नामक योग सम्पन्न है। सूर्य आदि ग्रह अपनी गतिके क्रमको लांघकर मीन लग्नमें जा पहुँचे हैं। विधाताकी आज्ञासे एक मुहूर्तके लिए वे सभी ग्रह प्रसन्नतापूर्वक ग्यारहवें स्थानमें जाकर वहाँ सानंद स्थित हो गये हैं। मेघों द्वारा मंद वर्षा की जा रही है, शीतल समीर धीर गतिसे चलने लगा है। धरित्री अत्यन्त प्रसन्न है। दसो दिशाएँ सहसा स्वच्छ हो गयी हैं। ऋषि, मुनि, गन्धर्व, किन्नर, देवता और देवियाँ सब प्रमोद-पूरित हो रहे हैं। अप्सराएँ नृत्य करने लगी हैं। गन्धर्वराज तथा विद्याधरियोंके मधुर गीत गगनाङ्गनमें गूँजने लगे हैं, नदियाँ सुखावह हो गयी हैं, अग्नि-होत्रकी अग्नियाँ सहसा प्रज्वलित हो उठी हैं। स्वर्गलोकसे मनोहर दुन्दभियोंकी ध्वनि आने लगी है; पारिजात पुष्पोंकी वर्षा हो रही है, भूदेवी स्वयं भी दिव्यनारीका रूप धारण करके सूतिकागारमें आ पहुँची हैं। जय-जयकार, शंखनाद तथा हरिकीर्तनका शब्द गूँज रहा है।

आकाशमें अर्धचन्द्रका और इधर कंसके कारागारमें पूर्णचन्द्रका उदय हुआ है। देवकीके हृदय-कमलके कोपसे भगवान् श्रीकृष्णका दिव्यरूप प्रकट हो गया है जो अत्यन्त कमनीय एवं मनोहर हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें तो उनके द्विभुज रूपका वर्णन है परंतु श्रीमद्भागवतमें चतुर्भुज रूपका वर्णन आता है। कल्प भेदसे दोनों ही ठीक हैं। हाँ, वहाँ तो हाथोंमें मुरली शोभा पा रही है। कर्णयुगलमें मकराकार कुण्डल झलमला रहे हैं। अधर-बिम्ब पर मंदहास्यकी छिटकी हुई छटासे मुखमण्डल और भी उद्भासित हो रहा है। श्रेष्ठ चिन्मय मणिरत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित सुन्दर आभूषण श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं। नूतन जलधरके समान श्यामाभिराम अङ्गों-पर दीप्तिमती विद्युत्के समान दिव्य पीताम्बरकी अद्भुत प्रभा अनिर्वचनीय शोभाकी सृष्टि कर रही है। दिव्यातिदिव्य चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुङ्कुमके द्रवसे विनिर्मित अङ्गराग अङ्ग-अङ्गमें अनुपम सुषमाको उद्भासित करता है। परम सुखद मञ्जु-मनोहर मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमाके शत-शत शशिधरोंकी शुभ्रज्योत्स्नाको तिरस्कृत कर रहा है। बिम्बाफलके सदृश लाल अधरोंके कारण मुखारविन्दकी मनोहरता और भी बढ़ गयी है। मस्तकपर मयूर-

पङ्कके मुकुट तथा दिव्यरत्नमय किरीट श्रीहरिकी सहज उद्दीप्त दिव्यज्योतिसे जगमगा रहे हैं। टेढ़ी कटि, त्रिभङ्गी झाँकी, वनमालाका शृङ्गार, वक्षमें श्रीवत्सकी स्वर्णमयी रेखा और उसपर कान्तिमान् कौस्तुभमणिकी भव्यप्रभा अद्भुत शोभाका संभार प्रस्तुत कर रही है।

वसुदेव-देवकी इस अनुपम अलभ्य और अनिर्वचनीय निधिको पाकर निहाल हो उठे हैं और अश्रुपूर्णनयन, पुलकित शरीर तथा नतमस्तक हो दोनों हाथ जोड़कर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करने लगे हैं।

श्रीकृष्ण मंदहास्यके साथ उन दोनोंको पूर्वजन्मकी तपस्याकी याद दिलाते हुए कहते हैं, 'तुमने मुझसे मेरे समान ही पुत्र माँगा था। परन्तु मेरे समान तो दूसरा कोई नहीं है; अतः स्वयं ही तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। अब तुम मुझे व्रजमें ले चलो और यशोदाके गृहमें रखकर वहाँ कन्या-रूपमें उत्पन्न हुई योगमायाको यहाँ ले आवो।' इतना कहकर वे तुरन्त नीलोज्ज्वल तेजःपुञ्जमय शिशुरूप हो जाते हैं।

वसुदेव-देवकीके बन्धन अपने-आप खुल गये। पहरेदार अचेत सो रहे हैं, क्यों न ऐसा हो, जब मुक्तिके जीवनधन आ गये, तब वहाँ बन्धन कैसे रहे? अतः उन्हें अपना कार्य पूर्ण करनेमें किसी प्रकारकी बाधाका सामना नहीं करना पड़ता है। वसुदेवके लौट आनेपर यशोदाजीकी नींद खुलती है और वे देखती हैं उनका नवजात शिशु धरतीपर पड़ा है। उसके अङ्ग-अङ्गसे मेघमालाके समान तेजःपुञ्जमयी श्यामकान्ति प्रस्फुटित हो रही है। वह नग्न-बालक बड़ा सुन्दर दिखायी देता है। व्रजरानी निरन्तर उसके वदनारविन्दका मधुपान कर रही हैं; परन्तु न तो नेत्र थकते हैं, न तृप्त ही होते हैं। जितना ही वे देखती हैं, उतना ही दर्शनकी प्यास उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अङ्गोंकी ओर देखती हैं तो प्रतीत होता है मानो समस्त अङ्ग नीलमणिसे निर्मित हों। अधरोंकी ओर दृष्टि जाती है तो दीखता है, मानो इनका निर्माण रक्त-रागमणिसे हुआ हो। करतल-चरणतल निहारती हैं तो अनुभव होता है, मानो ये पद्मराग मणिसे बने हों। नखावली पक्वदाडिमबीजकी आभावाले माणिक्यसे रचित-सी जान पड़ती है। देखते-ही-देखते व्रजेन्द्रगेहिनी कल्पनाके सुमधुर राज्यमें विचरने लगती हैं। सोचती हैं, क्या यह बालक मणिमय है, नहीं, मणि तो कठोर होती है, किन्तु यह शिशु अत्यन्त मृदु—सुकुमार है। तब क्या पुष्पावलियोंसे इसके अवयवोंकी रचना हुई है? ऐसा ही तो प्रतीत होता है। ओह कैसी विलक्षणता है? मानों नीलकमलोंसे समस्त अङ्गोंका, बन्धूक पुष्पोंसे अधरोष्ठका, जपाकुसुमोंसे कर-चरण-तलका और मल्लिकाकोरकोंसे ही नख-राशिका निर्माण हुआ हो!

धाय आती है और ठण्डे जलसे बालकको नहलाकर उसकी नाल काट देती है, साथ ही धीमे-धीमे मधुर कण्ठसे गाती है—

धन्य जसोदा भाग तिहारो जिन ऐसो सुत जायो हो।
जाके दरस परस सुख उपजत कुलको तिमिर नसायो हो॥

गोपाङ्गनाएँ शिशुका दर्शन करके दूसरोंके समक्ष गद्गद कण्ठसे कहती हैं—'ओहो! नन्दशिशुके अङ्ग इतने स्वच्छ हैं, मानो उत्कृष्ट नवनीलकान्तमणिके अङ्कुर हों। इतने मृदु

हैं, मानो तमालतरुपल्लव हों। इतने स्निग्ध हैं, मानो वर्षणोन्मुख नूतन जलधरके नवाङ्कुर हों। इतने सुरभित हैं, मानो त्रैलोक्य लक्ष्मीके भालपर कस्तूरी तिलक हो तथा इतने सुचिक्कण, इतने आकर्षणशील हैं, मानो सौभाग्यलक्ष्मीके लोचनोंमें लगा हुआ सिद्धाञ्जन ही अङ्गोंके रूपमें मूर्त हो गया हो।' यशोदानन्दनका मुख शरत्कालकी पूर्णिमाके सहस्र-सहस्र चारुचन्द्र-माओंको लज्जित कर रहा है। दोनों नेत्र नील इन्दीवरकी सुखमयी सुपमाको छीने लेते हैं। युगलचरणारविन्द प्रेमके पुञ्जसे प्रतीत होते हैं।

नन्दरायजी आकर शिशुको देखते हैं—वह पलंगपर उत्तानशायी होकर अवस्थित है। शिशु क्या है? मानो अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरु-उद्यानका प्रफुल्ल कुसुम हो कि वा समस्त उपनिपद्रूप कल्पलतावलियोंका मधुर फल हो।

अब ब्राह्मण आ गये हैं। व्रजपति स्नानकर वस्त्राभूपणोंसे अलंकृत हो उन सबको प्रणाम करते हैं। फिर नित्य अजन्माका जातकर्म संस्कार होता है।

धाय इस विचित्र सुन्दर शिशुको देखकर ही सब कुछ पा चुकी है, निहाल हो चुकी है, तो भी प्रेमसे झगड़कर नेग माँगती है और व्रजेश्वरी हँसकर अपने कण्ठका हीरक हार उसके गलेमें डाल देती हैं—

> औरनके हैं सकल गोप मेरे एक भवन तुम्हारो,
> मिटि जो गयो संताप जनमको देख्यो नंददुलारो।
> बहुत दिननकी आसा लागी झगरिन झगरो कीनो,
> मनमें बिहँसत हैं नंदरानी हार हियेको दीनो॥

जातकर्मके पश्चात् व्रजरानी बड़ी ललकसे हाथ बढ़ाती हैं और अपने हृदय-धनको उठाकर छातीसे लगा लेती हैं। द्विदल जपा-पुष्पकी कलिका-सदृश अधरोष्ठको खोलकर उसमें अपना स्तनाग्र दे देती हैं। वात्सल्यरस सुधासाररूप दूध झर रहा है और अलौकिक नराकृति पर ब्रह्म बड़े प्रेम और उत्कण्ठासे उसका पान कर रहे हैं।

समस्त व्रजमें महान् उत्सव हो रहा है। व्रजपुरकी समस्त गोपाङ्गनाएँ सज-धजकर सूतिकागारमें आयी हैं और नन्द-शिशुको निहारकर अपने नेत्रोंका होना सफल मानती हैं। वे गीत गा-गाकर नन्द-नन्दनको आशीर्वाद देती हैं—

> चिरजीओ जसुदानंद पूरन काम करी।
> धन धन्य दिवस धन रात धन्य यह पहर घरी॥
> धन धन्य महरिजूकी कूखि भाग सुहाग भरी।
> जिन जायो ऐसो पूत सब सुख फलन फरी॥
> थिर थाप्यो सब परिवार मनकी सूल हरी॥

समस्त गोपोंकी मण्डली गायों सहित आ पहुँची है। नन्दजी सबसे यथायोग्य मिलते हैं। आनन्दमें उन्मत्त हुए गोप हल्दी-दही छींटते हुए विविध भावभङ्गिमाओंका प्रदर्शन करते हैं। नन्दजी खुले हाथ रत्नराशि लुटाते हैं। लाखों गौओंका दान करते हैं। चारों ओर—नन्दको आनन्द भयो जै कन्हैयालालकी, ध्वनि गूँज उठी है। ●

कृष्णैकप्राणा मीरा

डा० श्री अशोक शास्त्री

★

राजस्थानकी महीयसी महिला मीराने वैष्णवधर्ममें एक नूतन युगका प्रवर्तन किया था। नन्दलालके साथ अपने मिलनके चिन्तनमें ही उन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया।

मीराने अपने शैशवकालमें एक बारात देखी। देखकर उन्होंने अपनी माँसे पूछा—'माँ! मेरा पति कौन होगा?' माता मीराको साथ लेकर मन्दिरमें गयीं और वहाँ गोपालजीको दिखाकर कहने लगीं, 'ये ही तेरे पति होंगे।' उसी क्षणसे मीराने गोपालजीको ही अपना पति मान लिया। उन्होंने बार-बार यह उद्‌गार प्रकट किया है कि—

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥'

यद्यपि मीराकी शादी मेवाड़के राणाके साथ हुई; तथापि उन्होंने तो अपने तन-मनको गिरिधर गोपालके ही चरणोंमें अर्पित किया। सांसारिक जीवनसे वे बिलकुल उदासीन और निःस्पृह थीं। उनका सर्वस्व श्रीगिरिधरपर ही निछावर हो चुका था।

वैष्णव साधनाओंमें जितने भी मार्ग हैं उनमें मधुर भाव सर्वश्रेष्ठ है। पुरुषोत्तमके साथ जीव-प्रकृतिके मिलनकी लीला ही मधुर भावके भक्तोंका भजनीय तत्त्व है।

वैष्णव साधनाओंमें दो ही स्तर हैं। एक स्तरमें साधक कहता है हम उनके हैं, दूसरे स्तरमें वे हमारे हैं। पहले स्तरमें श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें हमारा सब कुछ अर्पित है, दूसरे स्तरमें भक्तकी भावना इस रूपमें व्यक्त होती है कि 'प्रभु! मैं आपका ही हूँ, आप चाहे कष्ट दें, चाहे प्यारसे गले लगावें। इन्हीं दो भावोंको क्रमशः तदीया रति और मदीया रतिके नामसे अभिहित किया जाता है।

मीरा मदीया रति-भावकी सर्वश्रेष्ठ उपासिका थीं। उन्होंने श्रीकृष्णके चरणोंमें अपने-आपको निछावर करके श्रीकृष्णभक्तोंके बीच अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। मीराकी प्रार्थनाओंमें कहीं भी आत्मसुखके लिए कातरता नहीं है। कहा है—

"भक्तनिशान बनायो काहू ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल श्रृंखला तजी, मीरा गिरिधर भजी॥"

द्वापरमें गोपियोंके प्रसंगमें—गोपियोंका अपना कोई सुख नहीं था। वे तो श्रीकृष्ण सुखैकरति थीं। श्रीकृष्णकी प्रसन्नतामें उनकी प्रसन्नता, उनकी असन्तुष्टिमें इनकी असन्तुष्टि, तथा उनके सभी प्रिय कार्योंमें इन्हें सन्तुष्टि प्राप्त होती थी। उन गोपियोंकी यही भावना थी

कि ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो मेरे अपने लिए हो। सब कुछ श्रीकृष्णके प्रीत्यर्थ ही है। हमारे हृदयमें जो कुछ भी है वह सब प्रभुके लिए ही है। प्रभुके रससे ही हम सब रसिका हैं। यह व्रजका गोपी-भाव मदीया रतिका सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है।

मीराबाईके आत्म-दर्शन विश्लेषण द्वारा यही प्रमाणित होता है कि मीरा पूर्वजन्ममें स्वयं गोपी थीं तथा उसने अपने उपास्य श्रीकृष्ण भगवान्‌का पतिभावसे भजन किया था। वे स्वयं व्रजगोपियोंकी तरह ही आत्मनिवेदन करना चाहती हैं। प्रभुकी प्राप्तिके लिए उनके हृदयमें निरन्तर उत्कट इच्छा एवं उत्कण्ठा रहती थी। इहजीवनमें अपने नश्वर देहको कृतार्थ करनेके लिए एकमात्र प्रभुका भजन ही विधेय था। उनके मनमें जितनी भावनाएँ थीं वह सब प्रभुके लिए ही थीं। विरहसे जले हुए हृदयके तापको मिटानेके लिए प्रभुकी प्राप्ति ही उन्हें सतत अभीष्ट थी। वे कहती हैं—

'विरह विथा कासों कहुँ सजनी वह गई करपत नैन।
मीराके प्रभु कबहुँ मिलोगे दुख मेटन सुख दैन॥'

मीराबाईका साधनमार्ग अपना स्वनिर्दिष्ट मार्ग था। उन्होंने वैष्णवोंके विविध सम्प्रदायोंके अन्तर्गत किसी भी सम्प्रदायमें अपनेको सम्मिलित नहीं किया था। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि मीराबाईने अपने साधनमार्गमें और किसीको नहीं बुलाया। कोई सम्प्रदाय संगठित करनेके लिए उनके मनमें बिल्कुल अभिलाष नहीं था। अखिल विश्वमें श्रीकृष्ण भगवान्‌को छोड़कर और किसीके साथ उनकी परिचिति नहीं थी। यह स्वभावजा भक्ति संसारमें बहुत विरल है।

जैसे विरहज्वालामें जलकर गोपियाँ सर्वत्र श्रीकृष्णदर्शन करती थीं वैसे ही मीराबाईको भी संसारकी हर वस्तुमें श्रीकृष्णकी उपलब्धि होती थी। पूर्वजन्मकी गोपी—मीराबाई अन्तमें प्रभुसे मिल गयीं, पूर्णानन्दमें अभिभूत हो गयीं और श्रीकृष्णसेवा उपलब्ध कर ली। वे कहती हैं—"प्रभुसे मिलकर मेरा देह-सन्ताप सब दूर हो गया है। शरीर शीतल हो गया। विरहिणी मीरा शान्त हो गयीं। वे सुख-सिन्धुमें निमग्न हो गयीं। गिरिधारीलाल श्रीकृष्ण आनन्दस्वरूप हैं, उनको पाकर जैसे आकाशमें चन्द्रमाको देखकर कुमुदिनीको हर्ष होता है वैसे ही मीराके प्रत्येक रोमकूपके स्तर-स्तरमें आनन्दका वर्षण हो रहा है।

'सब भगवत का कारज किथा सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीरा विरहिनी सीतल होई, दुख-दर्द हरी हँसाया जी।'

भगवद्भावैकमयी कृष्णैकप्राणधना मीराजीके प्रेम-धर्म-रसास्वादसे भक्तमण्डलीकी आनन्दधारा अबाध प्रवाहित होगी, यह आशा है।

'रास'के विषयमें विभिन्न धारणाएँ

रासलीला : ऐतिहासिक पक्ष

श्रीरामाभिलाष त्रिपाठी

★

रासलीलाके इतिहासपर विचार करनेके पहले 'रास' शब्दपर विचार करना आवश्यक है। इसके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है। 'नृत्यके बीचमें जोरसे चिल्लानेकी ध्वनि'को डा० कंकणने 'रास' माना है। तदनुसार इन नृत्योंको रास कहा जाता है। डा० दशरथ ओझाका मत भिन्न है। उन्होंने कहा है—'रास शब्द संस्कृत भाषाका नहीं है, प्रत्युत देशी भाषाका है जो संस्कृत बन गया और देशी नाटचकलाको जो रासके नामसे प्रसिद्ध था, रासके नामसे ही संस्कृत ग्रन्थोंमें उद्धृत कर लिया गया है। रासके देशीय होनेका अनुमान इस बातसे भी होता है कि 'रासो' और 'रासक' नामसे राजस्थानी भाषामें भी इनका प्रयोग होता है। और वह रास, जिसका विशेष सम्बन्ध गोपियोंसे है, ग्वालोंमें प्रचलित कोई देशीय नाटक हो सकता है, जो संस्कृत नाटकसे अपहृत नहीं माना जा सकता[1]।'

रामनारायण अग्रवालने दोनों मतोंको अस्वीकार किया है तथा 'रसानां समूहो रासः' इस मतको युक्तिसंगत बताया है। उनके मतानुसार—'भारतीय काव्यमें शृंगाररसको रसराजका पद दिया गया है। शृंगाररसके देवता श्रीकृष्ण हैं। ऐसी दशामें उन रसिक शिरोमणि द्वारा नाचे गये नृत्यको रास कहकर हमारे साहित्यकारोंने सचमुच ही उचित काम किया है। श्रीकृष्णके नृत्यमें व्रजबालाओंने केवल शृंगाररसके सर्वोत्कृष्ट पावन रूपकी प्रत्यक्षानुभूति ही नहीं की वरन् व्रजवासियोंके हृदयमें भी नटनागर मनमोहनके ये नृत्य नाना प्रकारके स्थायी और सञ्चारीभावोंका उद्रेक प्रायः करते थे। अतः विविध रसों और भाव-अनुभावोंसे युक्त नटनागर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा नाचे गये ये नृत्य रास कहे गये; 'रस निष्पत्तिको परिपूर्णताके कारण इन्हें रास कहा गया[2]।' यह विचार युक्तिसंगत है।

भरतके नाटचशास्त्र तथा पुराणोंसे प्रतीत होता है कि प्राचीनकालसे ही रास नृत्योंका प्रचलन था। नाटचशास्त्रमें नाटकके 'रूपरूपकों'में रासकका उल्लेख है। उसका तीन भेद बतलाया गया है—

तालरासक नाम स्यात् च त्रेधा रासकं स्मृतम्।
दण्डरासकमेकं तु तथा मण्डलरासकम्॥

अब यदि व्रजके वर्तमान रासकी इस रासकसे तुलना करें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि तीनों रूपोंका समन्वय ही वर्तमान रास है। इसलिए रास-रासक एक ही है।

नाटचशास्त्रमें रासकके अतिरिक्त 'हल्लीश' नृत्यका भी उल्लेख है जो मण्डलरासकका

---

१. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास पृष्ठ ७५-७६।

२. रासलीला एक परिचय पृ० २।

ही समानधर्मा हैं। अन्य प्राचीन ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख मिलता है। परन्तु इस नृत्यमें तथा रासकमण्डलके नृत्यमें क्या भेद था इसका उल्लेख नहीं है।

वात्स्यायन कामसूत्रमें लिखा है—

हल्लीशक क्रीडनकैर्गायनैर्नाटथं रासकैः।

यशोधरने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है—

मण्डलेन च यत् स्त्रीणां नृत्य हल्लीशकं तु तत्।
नेता तत्र भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥

इसी आधारपर हल्लीशक नृत्य और मण्डलरासक अलग-अलग कुछ काल तक रहे होंगे किन्तु आगे आकर ये एक में मिल गये थे।

हरिवंश पुराणके द्वितीय पर्वके वीसवें अध्यायका नाम भी 'हल्लीशकक्रीडनम्' है। इस अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शरद् ज्योत्स्नामें भव्यरासका वर्णन है। उपर्युक्त तथ्योंसे स्पष्ट है कि रास और हल्लीशकमें मूलतः भेद नहीं है। दोनोंकी परम्परा अति प्राचीन है। यही भक्ति युगमें नये रूपमें पुनर्गठित होकर आज जीवित है।

रासको अभिनीत करनेकी यह परम्परा भागवतानुसार श्रीकृष्ण भगवान्के कालसे ही प्रारम्भ हुई। रासका प्रथम भाग तो केवल नृत्य, गायन, वादनसे सम्बन्धित है, स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा स्थापित है। दूसरा भाग जिसमें भगवान्के जीवनकी लीलाएँ अभिनीत होती हैं, उसका प्रारम्भ गोपियोंने किया। भगवान्के वियोगमें उनकी लीलाओंके अभिनय-द्वारा गोपियोंने स्वयं भगवान् कृष्णका सान्निध्य अनुभव किया था, अतः भगवान् कृष्णकी लीलाओंके अभिनयकी आदि आरम्भकर्ता स्वयं व्रजांगनाएँ हैं। श्रीधर स्वामीने कहा है—

"रासो नाम बहुनर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषः।"

ऐसी दशामें रासकी प्राचीनताका प्रमाण भगवान् श्रीकृष्णका व्रजलीला युग ही है। अतः निर्विवाद है कि रासलीलाओंका अभिनय व्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके कंस वध कालसे पूर्व ही हो चुका था जो पीछे सर्वत्र लोकप्रिय हुआ।

कहा जाता है १५वीं शताब्दीके प्रसिद्ध कृष्णभक्त नरसी मेहताने एक बार भगवान् कृष्णकी रासलीलाका दर्शन किया था।

वर्तमान मणिपुरी नृत्यका आधार भी रास ही माना जाता है। कत्थक नृत्यका भी उदय राससे ही है। इसका पुराना नाम नटवरी नृत्य है। नटवरी अर्थात् नटवर (कृष्ण-भगवान्)का नृत्य।

गीत गोविन्द, विद्यापति और चण्डीदासकी पदावली तथा व्रजभाषाका समस्त साहित्य रासके वर्णनोंसे भरा है। बंगालके व्रजबुलि साहित्यमें भी रासका वर्णन है। प्राचीन गुजराती साहित्यमें भी रासकी परम्परा है। रासके ये नृत्य प्राचीन कालमें बहुत लोकप्रिय थे। अग्रवालजीके विचारमें अपभ्रंश कालसे हिन्दीके भक्तियुग तक रासपर नटोंका अधिकार था। परन्तु बादमें नटोंके हाथों रासका स्वरूप बिगड़ गया। इस बारेमें श्री जीवगोस्वामीका कथन है—

नटैर्गृहीतकण्ठानां अन्योन्यान्तरकाश्रियाम्।
नर्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूतनर्तनम् ॥

वर्तमान रासकी प्रथा कबसे चली इसका लिखित विवरण नहीं मिलता। व्रजके पुराने रासधारी स्वामी राधाकृष्णदासके ग्रन्थ 'रास-सर्वस्व'से कुछ सूचनाएँ अपूर्ण रूपमें अवश्य मिलती हैं। वर्तमान रासलीलाके रंगमंचकी स्थापनामें महाप्रभु वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, हितहरिवंश आदि महानुभावोंका प्रमुख हाथ था। वर्तमान रासका प्रथम आयोजन मथुरा विश्राम घाटपर किया गया पर वह असफल रहा। इसकी असफलतापर महाप्रभु और स्वामीजीने श्री घमण्डदेवजीको रासका आयोजन करनेकी प्रेरणा दी। तदनुसार उन्होंने आयोजन किया। इस प्रकार व्रजके करहवा गाँवमें १६वीं शताब्दीमें रासरंगमंचका पुनर्गठन हुआ। 'रास सर्वस्व' ग्रन्थमें भी इसका कुछ उल्लेख है। इसके अतिरिक्त प्रियदासजीने कई स्थलोंपर हरिदासजीके रासलीलासे सम्बन्धित होनेका उल्लेख किया है। प्रियदासजीने कहा है—

रतन सुदेसमयी अवनि निकुंज धाम,
अति अभिराम पिय प्यारी केलि रास है।
× × ×
स्वामी हरिदास रस रासको बखान सकै,
रसिकताकी छाप जोई जाई मध्य पाइये।

उक्त उद्धरणोंसे प्रतीत होता है स्वामी हरिदासजी और बल्लभाचार्यजीका राससे अवश्य ही सम्बन्ध है। कुछ लोग भक्तमालके आधारपर नारायण भट्टको आरंभकर्ता मानते हैं। इस परम्परामें घमण्डदेवजी, उदयकरण फिर खेमकरण और इनके बाद उदयकरणके पुत्र विक्रमने यह उत्तराधिकार सँभाला।

इन रासलीलाओंकी प्रारम्भिक स्मृति अब भी बरसानेमें प्रत्येक भाद्रपद मासमें राधाष्टमीके पुण्य पर्वपर बूढ़ी लीलाके मेलेके रूपमें बड़े श्रद्धा-प्रेमसे मनायी जाती है। नारायण भट्टने इस बूढ़ी लीलाको प्रारम्भ किया और पृथक्-पृथक् लीलाओंका स्थान निर्दिष्ट करके रासमण्डलोंका निर्माण भी कराया। नारायण भट्ट द्वारा स्थापित यह परम्परा बड़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई और रासलीलाका सर्वतोमुखी विकास हुआ।

इस प्रकार नारायण भट्टने रासके मूलरूपका जीर्णोद्धार करके उसे शास्त्रीय रूप दिया। तथा नृत्य-वादन-गायनके साथ ही उसे अभिनयका रूप भी दिया। इस प्रकार 'नित्य रास'के साथ होनेवाली भगवान्‌की जीवन घटनाओंके अभिनयका प्रारम्भ भी इन्होंने किया। किन्तु घमण्डदेवजी द्वारा स्थापित 'नित्यरास'की प्रणालीको उन्होंने शीर्षस्थानीय ही रखा।

रासकी विशेषता है नृत्य प्रधान होना। यह नृत्य व्रजके ठेठ नृत्य हैं जो आजसे लगभग ४०० वर्ष पूर्वकी व्रज-संस्कृतिके मर्मको छिपाये अपने उसी रूपमें किंचित् परिवर्तनोंके साथ विद्यमान हैं।

रासके इतिहास-विकाससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रासका व्रजके लोक-जीवनसे घनिष्ट सम्पर्क रहा है।

एक वोधकथा

मैं क्या माँगूँ

श्रीसन्तकुमार टण्डन 'रसिक'

★

नित्यकी भाँति घरसे निकला और मन्दिरपर जा पहुँचा।

भीड़ थी। लोग आ-जा रहे थे। कोलाहल था—आनेका, प्रार्थनाओंका, घण्टोंका, जानेका।

मेरे मनमें तो निर्जनता थी, शान्ति थी।

स्त्री-पुरुष, वच्चे-युवा-वृद्ध—

कौन था जिसके मनमें कामना नहीं थी? कौन था जो कोई न कोई याचना लेकर नहीं आया था?

एकने कहा : हे प्रभु, वहूकी कोख भर दे। मेरा घर भर जायगा। तू सवका दाता है।

दूसरेने कहा : स्वामी, तू सवका सिरजनहार है। अनाथोंका नाथ है। मेरे वेटेको नौकरी लगा दे।

तीसरीने कहा : नाथ, व्यवसायमें उन्नति कर दे। घर-दूकानकी तिजोरियाँ भर दे। जल नहीं, मैं नित्य दूधसे स्नान कराऊँगा।

चौथेने कहा : हे भगवान्, मुकदमेमें जीत करा दे। इस वार एक छोटा-सा मन्दिर अवश्य वनवाऊँगा।

पाँचवेंने कहा : हे जगतपिता, अपने इस पुत्रको चुनावमें विजय-श्री दे। तेरे गुण दिल्ली तक गाऊँगा।

और इसी प्रकार क्रम चलता रहा। एकके वाद एक आते रहे। सव मनोकामना-पूर्तिकी याचना करते रहे।

मनोवाञ्छित विवाह, नौकरीमें तरक्की, स्वास्थ्य-लाभ, परीक्षामें सफलता, छोटी-वड़ी अगणित कामनाएँ-याचनाएँ।

मैंने देव-प्रतिमाकी ओर देखा—

भगवान् वहुत खीझे-चिढ़े नजर आ रहे थे।

जिसे देखो, वस माँगने चला आता है कुछ न कुछ। सवके सव निकम्मे भिखमंगे हैं। कर्महीन कपूत। किस-किसको दूँ, क्या-क्या दूँ, कवतक दूँ? इस भाँति तो इनकी अकर्मण्यता ही प्रोत्साहित होती रहेगी।

मुझे लगा देव-मूर्तिने संकेत देकर निकट वुलाया।

विनयपूर्वक, श्रद्धानत, हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

गीताके मुख्य संदेश कर्मयोगका पालन अनिवार्य हो

भगवान् श्रीकृष्ण और आधुनिक भारत

श्रीसुधाकर मालवीय एम० ए०, साहित्याचार्य

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्म-साहित्यका एक अमूल्य ग्रन्थ है। इसमें संक्षेपमें उपनिषदोंके सार निहित हैं। गीताका कर्मयोग ईशावास्योपनिषद्से लेकर नये रूपमें प्रस्तुत किया गया पुरुषार्थका उपदेश है। उक्त उपनिषद्का यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतं समाः।'

इसका अर्थ है कि 'मनुष्य कर्म करते हुए ही सौ वर्षोंतक जीनेकी कामना करे।'

श्रीमद्भगवद्गीता और मनुस्मृति दोनों ही कर्मयोगका पाठ शायद इसीलिए पढ़ाते रहे हैं कि भारतके लोग कभी कामचोरोंकी जिन्दगी वितानेके अभ्यासी न हो जायें। इस अभ्यासको रोकनेका अपने-अपने समयमें सभी नेताओंने प्रयास किया है। श्रीकृष्ण तत्कालीन भारतके गणमान्य नेता थे। उन्होंने अर्जुनको कर्मयोगकी शिक्षा देकर अपने कर्मोंसे अवगत कराया। यह समाजके प्रति उनकी महान् देन थी।

संसारमें वैयक्तिक स्वार्थसे काम नहीं चल सकता। वस्तुतः समाजमें आज दुःखी मनुष्योंकी सेवाकी आवश्यकता है। इसलिए ही कर्म करना भी अत्यावश्यक हो गया है। कर्मके विना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। सारी सृष्टि कर्मरत है। चन्द्र-अभियानकी सफलता कर्म ही है। कर्मके कारण ही हिरोशिमा फिरसे आवाद हो सका। अतः प्रत्येक व्यक्तिको ही कर्म करना चाहिए। यह आजके युगकी पुकार है।

स्वामी रामतीर्थने भी यही कहा था कि 'संसार बड़ी तेज गतिसे भागा जा रहा है। तुम भी उसके साथ ही भागो। यदि रुकोगे तो कुचल दिये जाओगे।' भारतकी यही स्थिति है। आज हमें जो कुचल दिया गया है वह सब कुछ कर्माभावके कारण ही हुआ है।

मूर्ख, तू वहाँ मौन बैठा क्या कर रहा है? कितने माँग-माँगकर चले गये। क्या तेरी कोई मनोकामना नहीं?

मैंने मौन निवेदन किया—परमपिता, प्रार्थनाके लिए ही आया हूँ। कुछ सार्थक प्रार्थना ही करूँगा। माँगनेके लिए आया हूँ और विना माँगे नहीं जाऊँगा। जब कितने ही याचक तुमसे याचनाकर चले गये तो तू मेरी उपेक्षा, मेरे साथ अन्याय क्यों करेगा? मैं तो कुछ तत्त्वपूर्ण-सारगर्भित वस्तु ही माँगूँगा।

मैं क्या माँगूँ? मेरे समक्ष बड़ा जटिल प्रश्न उपस्थित था। मैंने याचना की—हे! प्रभु, तू मुझे शक्ति दे, योग्यता दे, विवेक दे, मनुष्यता दे और सबसे बढ़कर अपनी भक्ति दे।

मैंने हाथ फैलाये तो प्रभुके मस्तकसे एक फूल मेरे हाथोंमें आ गिरा। मैं धन्य, पूर्णकाम और कृतार्थ हो गया।

मनुष्य संसारमें रहता है। वह एक सामाजिक प्राणी है। समाजमें रहते हुए यदि वह केवल अपने ऊपर ही दृष्टि देता है या अपना ही खयाल रखता है तो वह अनुचित है। क्योंकि यदि मोहल्लेमें आग लगी हो तो हमारा ही मकान कैसे सुरक्षित रह सकेगा ? अतः अपने आस-पास दीन-दुखियोंके रहते हुए भी हम अकेले ही सुखी रहनेकी इच्छा करें तो वह अकृत्य ही है। इस प्रकार कर्मयोगके माध्यमसे भगवान् श्रीकृष्णने उतने प्राचीनकालमें ही समाजवादका एक सूत्र उपस्थित कर दिया था।

भारतीय जनता भौतिक पदार्थोंसे आध्यात्मिक विषयकी ओर अधिक ध्यान देती है— यह बात भी नहीं है। आप किसी पेड़के नीचे किसी आदमीको बैठे देखेंगे जो यह कहेगा कि मैं धार्मिक चिन्तनमें मग्न हूँ। लेकिन वह वास्तवमें कामसे वचनेके लिए इस तरह बैठा है। बहुतसे भारतीय व्यापारी भी कामचोर हैं। इनका प्रत्यक्षीकरण बम्बई, कलकत्ता, कानपुर ऐसे शहरोंमें प्रचुर रूपमें किया जा सकता है। इनकी दिलचस्पी खासतौरसे सट्टेबाजीमें और सूदपर कर्ज देनेमें रहती है। वे किसी प्रकारका कर्म नहीं करना चाहते।

इस देशमें भीख माँगनेवालोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। करोड़ों मनुष्य भिक्षा-वृत्तिको बहुत बड़ा पुण्य कार्य समझते हैं। इस कार्यमें उन्हें किसी प्रकारकी लज्जाका अनुभव नहीं होता। हिन्दू-धर्मशास्त्रकार यह अवश्य कहते हैं कि अपंगोंको और पूजा-पाठ करनेवालोंको अपने संरक्षणमें लेना चाहिए। वस्तुतः उनकी धारणा यह थी कि जो लोग अन्य लोगोंका उपकार करते हैं उनकी देख-रेख समाजको करनी चाहिए। अतः धर्मके नामको कलंकित करनेवाले हट्टे-कट्टे स्वस्थ भिखमंगोंको दण्ड जरूर देना चाहिए।

मनुका कथन है कि ऐसी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए जिनमें धन कमानेके उपाय लिखे हों। मनुस्मृतिकार इस प्रकार यह चाहते थे कि लोग स्वयं अर्थोपार्जन करें और किन्हीं दूसरोंपर भार-स्वरूप न बने रहें। भगवान् श्रीकृष्णने जब गीतामें यह कहा कि कर्म करना ही चाहिए और कर्म न करनेसे पेटपालन भी कठिन समस्या बन जायेगी, तब उसका यही अर्थ था कि दूसरेका भोजन करना अधर्म कर्म है। अतः उससे विरत रहना ही उचित है।

आधुनिक समाजमें निठल्ले और काहिल लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य चाहे जितने हों किन्तु आपसमें झगड़ा करने और एक दूसरेको नीचा दिखानेके लिए देशके शत्रुओं तकसे साँठ-गाँठ कर लेनेमें प्रवीणताका परिचय देते हैं। यही हमारे देशके पतनका कारण है कि चीन और पाकिस्तान सरपर चढ़कर बोल रहे हैं। अंग्रेजोंके समयमें जब भारत विदेशी कम्पनियोंके कपड़ों पर आश्रित था तब हाथ-करघेके वस्त्रकी शुरुआत की गयी। तब उन पुरुषोंकी हँसी उड़ाई गयी जो चरखा या तकली चलाते थे। लेकिन जब थोड़ेसे गरीब लोगोंने कर्मठता दिखायी तो मैनचेस्टर और लंकाशायरकी मिलोंपर ताले लग गये और आज यह स्थिति है कि ये कपड़े विदेशी मुद्रा भी अर्जित करते हैं। बनारसी साड़ी व बनारसके खिलौने विदेशी मुद्राके लिए एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहे हैं। थोड़ी सी कर्मठताने जब यह कमाल किया है; तब समस्त भारतके लोगोंके कर्मठ और कार्य-कुशल हो जानेसे देशकी कितनी काया-पलट हो सकती है ? इसकी कल्पनासे भी उत्साह और आनन्दका अनुभव होता है।

आजके भारतवासी श्रमिक हों या नेता सभी अपने अधिकारके लिए पूर्ण सजग एवं सचेष्ट हैं। मिलोंमें ताला-बन्दी और हड़तालसे देशकी हवा खराब हो गयी है। विद्यालयमें भी छात्र पढ़ना नहीं चाहते हैं। इसीलिए पाकिस्तानने यह नियम बनाने की कोशिश की है कि तीन बार फेल हुआ विद्यार्थी उत्तीर्ण समझा जाय। आजके युवक लाठी-डंडा, सोडावाटरकी बोतल फेंकते हुए अपनी अकर्मण्यता, कामचोरीका प्रदर्शन कर रहे हैं। उपद्रव करना, नारा लगाना और अपशब्द जितना आज लाभदायक समझा जाता है; उतना पहले कभी नहीं था; क्योंकि आजकी सरकार और उसका प्रशासन भी अकर्मण्य है। विधान-सभामें आये दिन जो हो-हल्ला मचता है, वह पूर्ण जंगलीपनका परिचायक हो गया है। आजकी सरकारके सदस्य राष्ट्रकी समस्याओंको सामूहिक रूपसे न देखकर व्यक्तिगत रूपसे देखते हैं। यही कारण है कि बैंकोंके राष्ट्रीयकरणमें सबसे ज्यादा विरोध कुछेक लोगोंका ही रहा।

आज इन परिस्थितियोंमें गीताके उपदेशकी फिरसे आवश्यकता है और श्रीकृष्णके समान नेतृत्वकी जरूरत है। भारतके श्रेष्ठ वीर भगवान् कृष्णके मित्र और शिष्य अर्जुनकी जो दो प्रतिज्ञाएं १. दैन्य न दिखलाना और २. कर्मसे न भागना, है, इनका हमें पालन करना चाहिए—"अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।" इन दोनोंका मूल आधार कर्म ही है। आजके भारतमें हमें मानवके महत्त्वको स्मरण करना होगा। जिसमें उसका पुरुषार्थ ही मार्ग-दर्शक होगा। इसीलिए गांधीजी भी देश-वासियोंके जीवन और रहन-सहनको सादा, परिश्रम-शील और संयमी देखना चाहते थे।

यद्यपि आज भारतवर्ष स्वतंत्रताकी साँसमें जी रहा है। फिर भी इसकी अन्तरात्मामें जातीयताकी, भाषाकी, व भ्रष्टाचारकी जलन है। आज इस स्वतंत्र भारतमें पद और गद्दीके लिए द्वेष, कुण्ठा और भाँति-भाँतिके प्रपञ्चोंका तथा स्वार्थ-मोहका बाजार गर्म है। दल-परिवर्तनका रोग छुतही बीमारीकी तरह फैल रहा है। वहाँ अनुशासनहीन भवनाएँ जोर पकड़ चुकी हैं। बंगाल इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इन सारी बातोंको देखकर आजके इस विश्रृंखल भारतमें गीताके कर्म-योगकी साधना फिरसे आवश्यक हो गयी है।

अन्य ग्रन्थोंकी ही तरह हमें रामचरितमानसमें भी कर्मकी प्रधानताका ही पाठ दिखायी देता है।

कर्म प्रधान विस्व रचि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥

इस कथनसे तुलसीदास सिर्फ यही चाहते थे कि मनुष्य अपने कर्मसे पीछे न भागे। उन्होंने बराबर यही कहा है कि राम-नामकी महिमा अपरम्पार है। इतिहास इसके लिए साक्षी है कि आज वह नाम लाखों करोड़ों लोगोंको प्रेरणा देता रहा है और देता रहेगा। इसी तरहसे भगवान् श्रीकृष्णका नाम आज भी हमें कर्मयोगकी महान् प्रेरणा दे रहा है। उनकी अमर वाणी गीता आज सहस्रों वर्षोंसे भारतीयके ही नहीं समस्त मानव वर्गके जीवनको प्रेरणा देती आ रही है और तबतक देती रहेगी जबतक यह जगत् रहेगा। भगवान्के इस महान् सन्देशको हमें कभी भूलना नहीं चाहिए। ●

भाद्रपद मासके व्रत या त्यौहार

★

१. श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी व्रत❀

भाद्रपद कृष्णपक्षकी चंद्रोदय व्यापिनी अष्टमी तिथिको बुधवार और रोहिणी नक्षत्रके योगमें आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार मथुरानरेश कंसके कारागारमें हुआ था। अतः प्रति वर्ष उक्त तिथिको व्रत रखनेका विधान है। जब उक्त सभी योग मिल जायँ तो उस अष्टमीकी 'जयन्ती' संज्ञा होती है।

व्रत और पारणाका मुख्य काल : यदि आधी रातके समय अष्टमी तिथिका एक चौथाई अंश भी दृष्टिगोचर होता हो तो वही व्रतका मुख्य काल है। उसीमें साक्षात् श्रीहरिने अवतार ग्रहण किया है। जो अष्टमीको उपवास एवं जागरणपूर्वक व्रत करता है, वह करोड़ों जन्मोंके उपार्जित पापपुंजसे छुटकारा पा जाता है। सप्तमी विद्धा अष्टमीका यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए। व्रतके लिए नियत तिथि और व्रतके बीत जानेपर ही पारणा करनेका विधान है। तिथिके अन्तमें श्रीहरिका स्मरण तथा देवताओंका पूजन करके की हुई पारणा पवित्र मानी गयी है। यह मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाली होती है। सम्पूर्ण उपवास व्रतोंमें दिनको ही पारणा करनेका विधान है। ब्राह्मणों तथा देवताओंकी पूजा करके पूर्वाह्ण-कालमें की जानेवाली पारणा उत्तम मानी गयी है।

व्रतकी विधि : सप्तमी तिथिको तथा पारणाके दिन व्रती पुरुषको हविष्यान्न भोजन करके संयमपूर्वक रहना चाहिए। सप्तमीकी रात बीत जानेपर प्रातःकाल अरुणोदयकी वेलामें उठकर व्रती पुरुष प्रातःकालिक कृत्य पूर्ण करके स्नानपूर्वक यह संकल्प ले कि 'आज मैं भगवान् श्रीकृष्णकी प्रीति एवं प्रसन्नताके लिए व्रत तथा उपवास करूँगा।'

स्नान तथा नित्यकर्मके पश्चात् सूतिकागृहका निर्माण करे। वहाँ लोहेका खड्ग, प्रज्वलित अग्नि तथा रक्षकोंका समुदाय प्रस्तुत करे। अन्यान्य आवश्यक सामग्री तथा नालच्छेदनके लिए कैंची लाकर रख ले। धायका काम करनेवाली एक स्त्री भी रहनी चाहिए। सुन्दर षोडशोपचार पूजन-सामग्री, आठ प्रकारके फल, मिठाइयाँ और द्रव्य—इन सबका संग्रह करे। जायफल, कङ्कोल, अनार, श्रीफल, नारियल, नीबू, तथा मनोहर कूष्माण्ड

❀ यह विधि ब्रह्मवैवर्तपुराणसे ली गयी है। नारदपुराणमें भी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रतके विस्तृत विधानका वर्णन है।

आदि फल संग्रहणीय हैं। आसन, वसन, पाद्य, मधुपर्क, अर्घ्य। आचमनीय, स्नानीय, शय्या, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, अनुलेपन, धूप, दीप और आभूषण ये सोलह उपचार हैं।

(आधी राततक जन्मकी प्रतीक्षा करे जन्मके पश्चात् धायके द्वारा नालच्छेदनकी भावना करके फिर यथालब्धोपचारसे नवजात नन्द-नन्दनकी पूजा करनी चाहिए)।

पैर धोकर स्नान करनेके पश्चात् दो धुले हुए वस्त्र धारण करके आसनपर बैठें और आचमन करके स्वस्तिवाचनपूर्वक कलशस्थापन करे। कलशके समीप गणेश, दुर्गा, नवग्रह, मातृका तथा वरुण—इन पाँच देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् कलशपर परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णका आवाहन करके आस-पास वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा, बलदेव रोहिणी, षष्ठी देवी, पृथिवी, रोहिणी-नक्षत्र, अष्टमीतिथिकी अधिष्ठात्री देवी, स्थान देवता, अश्वत्थामा, बलि, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, व्यासदेव तथा मार्कण्डेय मुनि—इन सबका आह्वान करे तदनन्तर मस्तकपर फूल चढ़ाकर श्रीहरिका ध्यान करे—

ध्यान—भगवान् बालमुकुन्दका मैं चिन्तन करता हूँ। उनके श्रीअङ्गोंकी श्याम मेघके समान अभिराम आभा है। वे अत्यन्त सुन्दर हैं। उनके मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही है। ब्रह्मा, शिव, शेष नाग और धर्म—ये उन परमेश्वरकी स्तुति करते रहते हैं। बड़े-बड़े मुनीश्वर भी ध्यानके द्वारा उन्हें अपने वशमें नहीं कर पाते हैं। वे योगीश्वरोंके लिए भी अचिन्त्य हैं। उनकी कहीं भी तुलना नहीं है। वे सभी बातोंमें सबसे बढ़कर हैं।

इस प्रकार ध्यान करके पुष्प चढ़ावे और पूर्वोक्त समस्त उपचारोंको क्रमशः चढ़ावे। फिर सादर वन्दन और स्तवन करके आवाहित देवताओंमें से प्रत्येकका पूजन करे। तदनन्तर भक्तिभावसे सबको तीन-तीन बार पुष्पाञ्जलि दे। सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि गोप, गोपी, श्रीराधा, गणेश, कार्तिकेय, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्पाल, ग्रह, शेषनाग, सुदर्शन चक्र तथा श्रेष्ठ पार्षदगणकी पूजा करके समस्त पूजित देवताओंको पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको नैवेद्य एवं दक्षिणा दे। फिर जन्माध्यायमें वर्णित कथाका भक्तिभावसे श्रवण करे। रातमें जागता रहे। प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करके श्रीहरिका सानन्द पूजन करे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर भगवन्नामोंका कीर्तन करे। तदनन्तर स्वयं भी पारणा करें।

२. श्रीराधाष्टमी व्रत

नारदपुराणके अनुसार भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको राधाव्रत या श्रीराधाष्टमीका व्रत होता है। व्रतका संकल्प लेनेवाला पुरुष उपवासपूर्वक नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करे। फिर उत्तम स्थानमें बने हुए मण्डपके भीतर मण्डल बनावे। मण्डलके मध्य भागमें ताँबे या मिट्टीका कलश स्थापित करे। उसके ऊपर ताँबे या रजतका पात्र रक्खे। उस पात्रके ऊपर दो वस्त्रोंसे ढँकी हुई श्रीराधाकी सुवर्णमयी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करे। (प्रारम्भमें गणेश जीकी पूजा करे) कलशके सब ओर पूर्व आदि क्रमसे वृषभानु, कीर्तिदा, यशोदा, नन्द, व्रज,

गोपगण, गोपीवृन्द तथा गोसमुदायकी पूजा करे। मध्याह्न काल तक श्रीराधाके आविर्भावकी प्रतीक्षा करे और आविर्भाव हो जानेपर भक्तिभरे हृदयसे श्रीराधा-प्रतिमाकी विविध उपचारोंसे पूजा करे। धनिया, अजवाइन, सोंठ, खांड़ और घीके मेलसे नैवेद्य करके उसे चाँदीके पात्रमें रखकर श्रीराधाको अर्पित करे। (साथ ही अन्यान्य प्रकारके मिष्ठान्न, नवनीत, खीर तथा भाँति-भाँतिके फलोंका भोग लगावे, आचमन कराकर मुख शुद्धिके लिए ताम्बूल दे, दक्षिणा चढ़ावे और आरती करे। फिर उद्दाम कीर्तनके द्वारा उत्सवको सप्राण करे।) इस प्रकार पूजनादि सम्पन्न करके एक मुक्त व्रत करे। यदि शक्ति हो तो पूरा उपवास करे। फिर दूसरे दिन सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर आचार्यको प्रतिमा दान करे। तत्पश्चात् व्रती पुरुष स्वयं भोजन करे। इस प्रकार विधिपूर्वक राधाष्टमी व्रत करनेसे व्रती पुरुष व्रजका रहस्य जान लेता है तथा राधा-परिकरोंमें निवास करता है।

इसी दिन शिव सम्बन्धी दूर्वाष्टमी व्रत भी किया जाता है।

३. वामनद्वादशी व्रत

भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको वामनद्वादशी मनायी जाती है। उसी दिन भगवान्‌का वामन अवतार हुआ था। उस दिन उपवासपूर्वक मध्याह्न कालमें भगवान् वामनकी पूजा करे तथा उनके समक्ष बारह ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। तत्पश्चात् स्वर्णमयी दक्षिणा दे। इससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।

४. गोत्रिरात्र व्रत

भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीको गोत्रिरात्र व्रत किया जाता है। उस दिन भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी सोने या चाँदीकी प्रतिमा बनवाकर उसे पञ्चामृतसे स्नान करावे। फिर शुभ्र अष्टदल कमलके मण्डलमें पीठपर भगवद्विग्रहको स्थापित करके सुन्दर वस्त्र चढ़ाकर गन्ध आदि से उसकी पूजा करे। तदनन्तर आरती करके अन्न और जलसहित घटका दान करे। इस प्रकार लगातार तीन दिनों तक सब विधिका पालन करके व्रतके अन्तमें गौका पूजन करे। धनकी दक्षिणा दे और निम्नाङ्कित मन्त्रसे गौको नमस्कार करे—

पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ।
तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः॥

(ना० पूर्व० १२२।३६-३७)

फिर नीचे लिखे मन्त्रसे गायकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(ना० पूर्व० १२२।३८)

तत्पश्चात् ब्राह्मणदम्पतिका पूर्णतः सत्कार करके उन्हें भोजन करावे और लक्ष्मी-नारायणकी प्रतिमा दानमें दे दे। इस व्रतसे सैंकड़ों अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञोंका फल प्राप्त हो जाता है।

८. अनन्त चतुर्दशी व्रत

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको उत्तम अनन्त व्रतका पालन करना चाहिए। इसमें एक समय भोजन किया जाता है। एक सेर गेहूँका आटा लेकर उसे शक्कर और घीमें पकाये—पूआ तैयार करे। उसे भगवान् अनन्तको अर्पित करे। इसके पूर्व कपास अथवा रेशमके सुन्दर सूतको चौदह गाँठोंसे युक्त करके उसका गन्ध आदि उपचारोंसे पूजन करे फिर पुराने सूतको बाँहमेंसे उतारकर उसे किसी जलाशयमें डाल दे और पूजित अनन्त सूत्रको नारी बायीं भुजामें तथा पुरुष दाहिनी भुजामें बाँध ले। आटेका पूआ या पिट्ठी पकाकर दक्षिणा सहित उसका दान करे। फिर स्वयं भी परिमित मात्रामें उसे भोजन करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतका चौदह वर्षों तक पालन करना चाहिए। इसके बाद विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे।

९. उमामहेश्वर व्रत

भाद्रपद मासकी पूर्णिमा तिथिको उमा-महेश्वर व्रत किया जाता है। इसमें शिव-पार्वतीकी भक्ति भावसे आराधना की जाती है। ●

कंस कारागारमें कृष्णावतार

(गीत)

द्वापरमें आईं शुभ घड़ियाँ !
जबकि देवकी और देवकी—टूटी थीं—बेड़ी-हथकड़ियाँ।
नभ-मण्डलसे लगी हुई थीं, प्रलयंकर मेघोंकी झड़ियाँ॥
था विराट, बालक बन आया—ले निज कर जादूकी छड़ियाँ।
कविपुष्कर, उस कंस-राजकी उखड़ गयीं जीवनकी जड़ियाँ॥

(दोहा)

भारतमें वह धन्य था—अनुपम कारागार।
पुरुष पुरातनका हुआ, जहाँ कृष्ण-अवतार॥
मानवता रक्षित हुई—पाकर दैवी शक्ति।
धर्मध्वजा फहरा उठी, बढ़ी सुरोचित भक्ति॥

जगन्नारायणदेव शर्मा
'कविपुष्कर' शास्त्री

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

फिर इन्द्रने कुपित होकर जो प्रलयंकर वृष्टि आरम्भ की उससे व्रजकी रक्षा भगवान्ने गिरिराज गोवर्धनको छत्रकी भाँति हाथमें लेकर किया। अन्तमें इन्द्रका भी मान भङ्ग हुआ और वे भगवान्के चरणोंमें नतमस्तक हुए। देवलोककी गौओंने उस समय भगवान्का गोविन्दके पदपर अभिषेक किया। नन्दरायजीको वरुणके दूत उठा ले गये थे, भगवान् स्वयं जाकर वरुणलोकसे उन्हें ले आये। फिर एक बार अजगरके मुखसे निकालकर उनकी रक्षा की। फिर भगवान्ने अरिष्टासुर, केशी तथा व्योमासुरका वध करके वनको सर्वथा निष्कण्टक बना दिया।

अक्रूरके साथ मथुरामें आनेपर उन्होंने 'जैसेको तैसा' वाली नीति दिखायी। राजाकी सेवाके मदसे उन्मत्त रजकको उसके कटुवचनोंका ऐसा दण्ड दिया कि फिर वह इस लोकसे ही विदा हो गया। साथ ही अपने प्रति थोड़ी-सी भी सहानुभूति या सहयोग करनेवाले दर्जी और मालीको मालामाल एवं निहाल कर दिया। कुब्जाकी सेवापर रीझकर उन्होंने उसे त्रिलोक-सुन्दरी बना दिया और उसपर अनुग्रह करनेमें उनको जरा-सी भी हिचक नहीं हुई। कंसका धनुप तोड़कर उसे चेतावनी दे दी कि 'अब तेरा काल आ पहुँचा है।' कुवलयापीड नामधारी मदमत्त गजराजको धराशायी करके उसके दाँत उखाड़ लिये और मल्लशालामें पहुँच-कर चाणूर तथा कंसको भी चूरन बना दिया। माता-पिता वसुदेव देवकीको कारागारसे मुक्त किया और कंसके पिता उग्रसेनको ही यादवोंका राजा बनाया। स्वयं कहीं भी किसी लोभ या आसक्तिका परिचय नहीं दिया। गुरुगृहमें विद्या पढ़कर दक्षिणाके रूपमें उनके मरे हुए पुत्रको ही यमलोकसे लाकर दे दिया। अक्रूरको हस्तिनापुर भेजकर संकटापन्न पाण्डवोंकी सुध ली तथा कंसकी मृत्युका बदला लेनेको आये हुए जरासन्ध और उसके साथी नरेशोंको बलराम और श्रीकृष्णने सत्रह बार रणभूमिसे मार भगाया। फिर यादवोंकी सुरक्षाके लिए उन्होंने पश्चिम समुद्रमें द्वारका दुर्गका-निर्माण कराया और सबको वहाँ भेजकर स्वयं जरासन्धके पुनः आगमनकी प्रतीक्षामें वे दोनों भाई मथुरामें ही स्थित रहे। इसी बीचमें कालयवन भारी सेनाके साथ आ पहुँचा। श्रीकृष्णने कूटनीतिका आश्रय ले भागना शुरू किया और पीछा करनेवाले उस यवनाधमको एक गुफामें ले जाकर नष्ट करा दिया। अठारहवीं बार जरासन्ध उन्हें न पा सका। फिर रुक्मिणी-हरणके प्रसंगमें उन यादववीरोंने उन सबके छक्के छुड़ाये। क्रमशः रुक्मिणी आदि आठ पटरानियोंको, जो एकमात्र उन्हींमें अनुरक्त थीं, शौर्यका परिचय देकर प्राप्त किया और सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य उन्होंने भौमासुरके यहाँ कैदमें पड़ी हुई सोलह हजार राजकुमारियोंका उद्धार करके किया। उनका हाथ थामनेवाला कोई नहीं था। उनकी प्रार्थनापर स्वयं श्रीकृष्णने उन अबलाओंको शरण दी और उन्हें अपने रनिवासमें लेकर उन्हें समाजमें उन्नत मस्तक होकर रहनेका सुदुर्लभ अवसर दिया। छात्रावस्थाके एक दीन-हीन मित्र सुदामा जब घर पधारे तो श्रीकृष्णने उनका देवताकी भाँति सत्कार किया और बिना कहे ही उनको समान ऐश्वर्यका स्वामी बना दिया। ऐसी मित्रवत्सलता कहाँ मिलेगी।

अनिरुद्धके विवाहमें वाणासुरकी सहायताके लिए आये हुए भगवान् शङ्करको भी श्रीकृष्णने परास्त किया। पौण्ड्रक तथा काशिराजका भी वध करके काशीपुरीको जला दिया। राजा नृगका उद्धार किया। भीमसेनसे जरासन्धका वध करवाकर उसकी कैदमें पड़े हुए राजाओंका उद्धार किया। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें कटुवादी शिशुपालका संहार करके द्वारकामें सौभ विमान सहित शाल्वको मार गिराया। तदनन्तर दन्तवक्र और विदूरथका भी वध किया। कौरव-सभामें द्रौपदीकी लाज वचायी और वनवासके समय दुर्वासाके शापसे पाण्डवोंकी रक्षा की। महाभारत युद्धमें स्वयं निहत्थे रहकर अर्जुनके सारथि बने और समस्त कौरवोंका अपनी कुशल रणनीतिके द्वारा संहार कराकर पाण्डव पक्षको विजयी बनाया। उसी युद्धके आरम्भमें गीता-ज्ञानका उपदेश देकर युग-युगके लिए हमारे सामने ऐसा प्रकाश-स्तम्भ खड़ा कर दिया, जिससे सदा सभी दशाओंमें हम मार्गदर्शन प्राप्त करते रहेंगे।

वे खुलकर संसारके जीवोंसे कहते हैं, 'तुम समस्त धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ मैं तुम्हें सब पाप-तापसे मुक्त कर दूँगा।' 'मैं लोक-महेश्वर होनेके साथ ही सबका सुहृद् हूँ। इसे जो ठीकसे समझ लेगा, उसे परम शान्ति प्राप्त होगी।'

ऐसा कहने और करनेवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर साम्यवादी नेता दूसरा कौन होगा? स्मरण रहे, यहाँ आन्तरिक समता अभीष्ट है, बाह्य या शारीरिक नहीं। बाह्य समता हो ही नहीं सकती। जैसे बाह्य जगत्में स्त्री-पुरुषके भेदको कोई भी वाद मिटा नहीं सकता, उसी प्रकार प्रकृति-वैषम्य या बर्ताव-भेदको मिटाना सर्वथा असम्भव है। यदि यह असम्भव प्रयास हुआ तो प्रलय हो जायगा। परिवर्तन उतना ही अपेक्षित है, जो सम्भव हो, सत्य, शिव तथा सुन्दर हो। श्रीकृष्ण आज भी जगत्का मङ्गल करनेके लिए हमारे साथ हैं। वे शाश्वत नेता और युगपुरुष हैं। हमें उनके नेतृत्वमें श्रद्धा और विश्वासपूर्वक चलकर सबके परम मङ्गलके लिए सतत सचेष्ट रहना चाहिए। ●

श्रीराधाका प्राकट्य

महारस पूरन प्रगटचो आनि।
अति फूली घर-घर व्रज-नारी (श्री) राधा प्रगटी जानि॥
धाई मंगल साज सबै लै महा महोच्छव मानि।
आई घर वृषभानु गोपके श्रीफल सोहत पानि॥
कीरति बदन-सुधानिधि देख्यौ सुंदर रूप बखानि।
नाचत गावत दै कर-तारी, होत न हरख अघानि॥
देत असीस सीस चरनन धरि सदा रहौ सुखदानि।
रस की निधि व्रज रसिकराय सौं करौ सकल दुख हानि॥

सत्साहित्य पढ़िये

परमपूज्य श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज-द्वारा लिखित तथा उनके प्रवचनोंसे संगृहीत

१. माण्डूक्य-प्रवचन	६.००
२. माण्डूक्यकारिकाप्रवचन [वैतथ्य-प्रकरण]	५.००
३. श्रीमद्भागवत-रहस्य	२.५०
४. भक्ति-सर्वस्व	५.००
५. भगवान्के पाँच अवतार	२.००
६. ईशावास्य-प्रवचन	१.२५
७. सांख्ययोग	५.००
८. भक्तियोग	४.५०
९. पुरुषोत्तमयोग	२.५०
१०. ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना	६.५०
११. गोपीगीत	३.५०
१२. भागवत-विचार-दोहन	१.००
१३. नारद-भक्ति-दर्शन	६.००
१४. महाराजश्रीका एक परिचय	०.५०
१५. मुण्डकसुधा	२.५०
१६-१७. आनन्द-वाणी भाग १-२	०.५० प्रति
१८-२५. आनन्दवाणी भाग ३-१०	१.०० प्रति
२६. महाराज श्रीका एक परिचय [सिन्धी]	०.२५
२७. मोहन नी मोहनी [गुजराती]	०.५०
२८. चरित्र-निर्माण आणि ब्रह्मज्ञान [मराठी]	१.००
२९. श्रीमद्भागवत-रहस्य [सिन्धी]	२.००
३०. साधना और ब्रह्मानुभूति	३.५०
३१. गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	०.२०
३२. श्री उड़ियाबाबाजी और मोकलपुरके बाबा	०.२०
३३. ज्ञान-निर्झर (श्री डोंगरेजी महाराज)	०.२५
३४. क्या साधु कुछ राष्ट्रसेवा कर सकते हैं !	०.२०

निम्न पतेपर पत्र लिखकर अपनी रुचिकी पुस्तकें मँगाइये ।

सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्ट

'विपुल' २८/१६ रिजरोड, मलाबार हिल, बम्बई-६
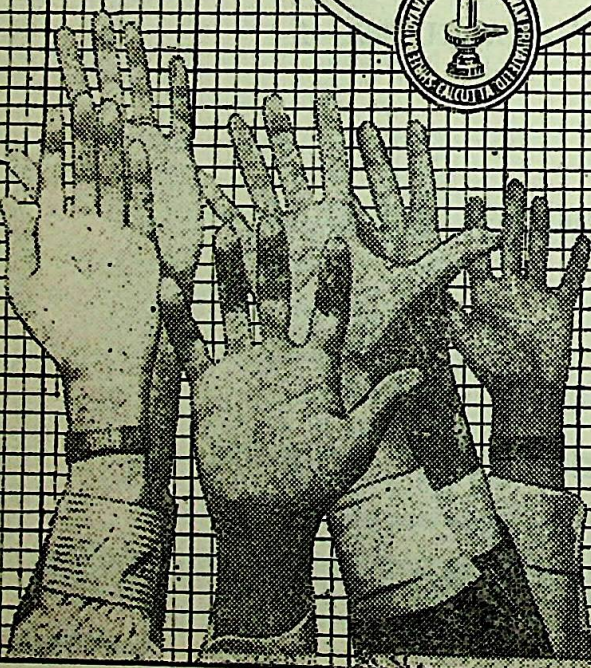
SUPERB!
FROM ANY VIEWPOINT
Ambassador
Mark II
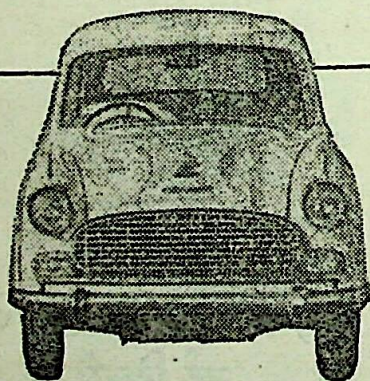
श्रीहरिः

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिकता, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोधको जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

● **नियम :** उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें छापने, न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हासिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६. कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज-वाराणसीके पतेपर भेजें।

● 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होना है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एक बार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवन भर 'श्रीकृष्ण-संदेश' मिलता रहेगा।

ग्राहकोंको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

● **विज्ञापन :** इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

मथुरा

•

मथुरा हरि नें अवतार लियौ,
अस्थान नहीं याते मुथरा।
मुथरा जमुना अस्नान करौ,
मिट है जमदूतन के खतरा॥

खतरा सब छाँड़ि गुपाल भजौ,
'दत्तू' कवि नैंम यही पकरा।
पकरा हरिनाम अधार हिये,
भज रे मन तू मथुरा मथुरा॥

'दत्तू' कवि

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा के लिए देवधर शर्मा द्वारा
आनन्द-कानन प्रेस, डुण्ढिराज, वाराणसी–१
में मुद्रित एवं प्रकाशित।